ऋग्

यजु

॥ ओ३म् ॥

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः
करम्भेण सजोषसः ॥ यजु-३-४४ ॥
अतिथि पूर्वो नाश्नीयात् ॥ अथर्व ६ का ६ (३)

अध्यात्म-सुधा-५

* अतिथि यज्ञ *



लेखक :

स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती

[भू० पू० सत्य भूषण आचार्य]

संचालक :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक ।

लेखक :—गायत्री माता, मेरी मां
अध्यात्म सुधा-४ (यज्ञों पर प्रमाणिक पुस्तक)
सन्ध्या प्रभाकर, गृहस्थ दुःख निवारण, काया कल्प यज्ञ

प्रकाशक :

श्रीमती वेद प्रभा डावर

राजौरी गार्डन, न्यू दिल्ली-२६

साम

अथर्व

॥ ओ३म् ॥

समर्पण

परम पूज्य तपस्वी त्यागी ब्रह्मनिष्ठ, यज्ञ प्रेमी गुरु वर्य ब्रह्मलीन महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की पुनीत स्मृति में सादर समर्पित—प्रभु करें कि गुरु वर्य की आत्मा को स्वीकार हो।

विनीत :

चरण सेवक

विज्ञानानन्द सरस्वती

।। ओ३म् ।।

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः
करम्भेण सजोषसः ।। यजु-३-४४ ।।
अतिथि पूर्वो नाश्नीयात् ।। अथर्व ९ का ६ (३)

अध्यात्म-सुधा-५

* अतिथि यज्ञ *

★

लेखक :

स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती

[भू० पू० सत्य भूषण आचार्य]

संचालक :

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक ।

लेखक :—गायत्री माता, मेरी मां
अध्यात्म सुधा-४ (यज्ञों पर प्रमाणित पुस्तक)
सन्ध्या प्रभाकर, गृहस्थ दुःख निवारण, काया कल्प यज्ञ

प्रकाशक :

श्रीमती वेद प्रभा डावर

राजौरी गार्डन, न्यू दिल्ली-६

द्वितीय संस्करण : ५००   मूल्य : १-५०

॥ ओ३म् ॥

❋ राष्ट्रीय प्रार्थना ❋

ओ३म् आ ब्राह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्टाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नः ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् । य० अ० २२ मं २२

हे जगदीश ! दयालु ब्रह्म, प्रभु सुनिये विनय हमारी ।
हों ब्राह्मण उत्पन्न देश में धर्म कर्म व्रतधारी ॥

क्षत्री हों रणधीर महारथी, धनुर्वेद अधिकारी ।
धेनु दूध वाली हों सुन्दर वृषभ तुंग बल धारी ॥

हों तुरंग गति चपल अङ्गना, हों सरूप गुण वाली ।
विजय रथी पुत्र जन पद के, रत्न तेज बलशाली ॥

जब ही जब जग करे कामना, जल धर जल बरसावें ।
फलें पकें बहु सुखद वनस्पति, योगक्षेम सब पावें ॥

—०—

॥ ओ३म् ॥

-: आशीर्वाद :-

श्रीयुत पूज्यपाद गुरुदेव महात्मा प्रभु आश्रित
स्वामी जी महाराज की पवित्र सम्मति का

उद्गार

यह अध्यात्म-सुधा-५ पुस्तक श्री आचार्य सत्य भूषण जी ने मुझे आदि से अन्त तक सुनाई। वेद के पवित्र मन्त्रों द्वारा और अन्य शास्त्रों के प्रमाण और सच्ची घटनाओं द्वारा अतिथि यज्ञ की महानता और जरूरत को और अच्छी तरह से दर्शाया है। जिस भारत को और आर्य जनता को अतिथि यज्ञ का बड़ा अभिमान था, सदियों से उस का लोप हो जाने से आर्य जाति की बड़ी क्षति हुई। इस देश और जाति को सुचेत करने के लिए आचार्य जी ने यह पुस्तक लिख कर बड़ा उपकार किया है। जिस पवित्र भावना उन्होंने से पुस्तक लिखी है प्रभू देव कृपा करें कि जनता उन्हीं भावों से प्रभावित होकर अपनी जाति को उज्जवल बनाने का प्रयत्न करे। तो प्रभु देव की आशीर्वाद और लेखक का लिखना सत्य सत्य हो जाए। यही मेरी शुभ आशीश है।

अलवर
२-६-५७

ओम् शम्
प्रभु आश्रित

॥ ओ३म् ॥

नमामि माता नमामि माता

तू ही मेरी जन्म दाता ! दीन दुखियो का तू है त्राता ।

सृष्टिकर्त्ता तू जग विधाता, नमामि माता नमामि माता ॥१

यह नभ मण्डल के चांद तारे, और रवि के सभी सिय्यारे ।

तेरी ज्योति के है नजारे, नमामि माता नमामि माता ॥२

संसार के हैं असंख्य जन्तु, श्रेष्ठ चोला दिया परन्तु

विषयों से मैला किया है किन्तु, नमामि माता नमामि माता ॥३

नहीं हैं मेरा कोई भी वाली यह बाग तेरा तू ही है माली

दर पै आया हूं बनके सवाली, नमामि माता नमामि माता ॥४

पिला दो अमृत रस अपना, मधु पूरित हो मेरी रसना

कर्तव्य मेरा हो नाम जपना, नमामि माता नमामि माता ॥५

गायत्री पर हूं विचार करता, आश्रित तेरा हूं तू विधाता

सफल करो है यह मेरी विनती, नमामि माता नमामि माता ॥६

भूषण का इक सहारा तू हैं, जीवन के उसकी आधारा तू है

रचना प्यारी और प्यारा तू है, नमामि माता नमामि माता ॥७

—०—

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ॥

य० ३२.१४

भा० :—हे प्रकाश स्वरूप प्रभो ! मेधा बुद्धि को अनेकों विद्वान् और रक्षा करने हारे ज्ञानी जन प्राप्त होके उसका सदुपयोग करते हैं उस मेधा बुद्धि से आज मुझे प्रशंसित बुद्धि वाला कीजिए ॥

वर्तमान काल के सभ्य पुरुषों के एक प्रीति भोजन का दृश्य !

भारतवर्ष की राजधानी में मुझे एक प्रेमी ने अपने नवजात शिशु के नामकरण संस्कार के लिए निमन्त्रित किया। मैं गया मेरा प्रेमी राज्य दरबार में एक प्रसिद्ध कार्य करने वाला है, हजारों मासिक आय है, अतः पढ़े लिखों में, बार एसोसिएशन और जजों आदि में उनका बड़ा प्रभाव तथा मेल जोल है। इस शुभ अवसर पर उन्होंने अनेकों सभ्य देवी देवताओं को निमन्त्रित कर रखा था। देवता लोग तो पश्चिमी सभ्यता के

पूरे समर्थक और सच्चा आकार दर्शा रहे थे। सब के सब कोट, बूट, पैंट, कालर, नेकटाई आदि से विभूषित थे। एक भी तो ऐसा न था जिस ने धोती पहिन रखी हो। मैं तो अपने आप को उन के मध्य में ऐसा अनुभव करने लगा कि "न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा"। जिस प्रकार हंसों की सभा में बगला शोभा नही देता उसी प्रकार मैं अपने आप को समझने लगा परन्तु ऐसा समझना तो मेरी गलती थी, वह सब शिष्टाचारी सभ्य मानव ही थे। देवियों में एक भी देवी मुझे ऐसी प्रतीत न हुई जिस को मैं भारतीय, वेदानुयायिनी देवी कह सकता। देवियों के सम्बन्ध में वेद में निम्न मन्त्र आया है :—

अध: पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौहर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्—
स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ: ॥ ८. ३३. १९ ॥

भा० :—हे स्त्री ? तू (अध: पश्यस्व) नीचे देख, विनयशील हो। (मा उपरि) ऊपर मत देख, उद्धत मत हो। (पादकों संतराम्) दोनों पैरों को अच्छी प्रकार एकत्र कर रख, असभ्यता से पैर मत फैला। (ते कशप्लकौ मा दृशन्) तेरे टखनों को कोई भी न देखे। ऐसे विनयाचार से स्त्री हो कर भी अवश्य (ब्रह्मा बभूविथ) वेदवेत्ता वा पूज्य हो सकती है ॥

यहां तो अवस्था ही और थी। सब के सब नंगे सिर, प्राय:

सब दो चोटी धारी, पाऊं में जुराबें और एड़ीदार बूट खट खट करने वाले, चेहरों पर पाउडर आदि लगाए हुए, नाभि तक जम्पर तितलियों की तरह इधर उधर मटक तथा चहचहा रही थीं। इतनी कृपा सब ने की कि संस्कार की सारी कार्यवाही में उन्होंने गम्भीरता पूर्वक वर्ताव किया और मौन बैठे रहे। इस सद्व्यवहार के लिए मैं उनका अति आभारी हूं। परमात्मन् देव उन को सुमति प्रदान करें कि वह वेदशास्त्र की मर्यादाओं के पालन करने वाले बने। अस्तु!

संस्कार की कार्यवाही समाप्त होते ही सब को Dining Tables की ओर जो संस्कार स्थल से कुछ दूर थीं, पहूंचने की चिन्ता लग गई। भोजन परोसने, हाथ आदि धोने और सेवा आदि का तरीका अनोखा मैंने देखा। हाथ तो प्रायः किसी देवी देवता ने धोया ही नहीं यद्यपि यजमान की ओर से Washing Basin और साबुन और तौलिया का प्रबन्ध पहिले से हो चुका था। एक ही पात्र से सब ने सब्जी उठाई और उठाते रहे. चपाती, हलवा, पूड़ी, कचौड़ी, झूटे सुच्चे हाथों से उठा उठा अपने अपने मुख में देते, हसी विनोद करते रहे और खड़े-२ ही आन की आन में सब माल चट कर, हाथ पूंजते, 'लो भाई! आपका धन्यवाद! आप ने अच्छा खाना खिलाया, खूब आनन्द आया'—यह कह कर चलते बने। हां कइयों ने तो बच्चे के लिए उपहार भी यजमान को भेंट किए।

मैं यह सब कुछ देख रहा था और मन ही मन में सोच रहा

था कि शायद आज के दिन के दृश्यों को आज से हजारों वर्ष पूर्व महर्षि कणाद ने अपने योग बल से देखकर खेद प्रकट किया था और रो दिया था वह गाथा इस प्रकार कहीं जाती है।

एक बार महर्षि कणाद, फसल कट जाने के बाद क्षेत्र से कण (गिरे हुए दाने) चुन रहे थे अपने भोजन निर्वाह के लिए। महाराजा युधिष्ठिर, अर्जुन और भगवान् श्री कृष्ण इकट्ठे जा रहे थे, दूर से महर्षि को देखकर महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को महर्षि के पास भेजा कि कल के भोजन का निमन्त्रण दे आओ। अर्जुन जब महर्षि के पास गया प्रणाम किया और कहा कि भगवन् ! महाराजा युधिष्ठिर ने मुझे भेजा है कि आप कल का भोजन उनके हां खाना स्वीकार करें। महर्षि ने जब यह शब्द सुने तो रो पड़े। अर्जुन चकित रह गया और सोचने लगा कि मैंने कौन सा ऐसा अपराध किया है जिस से महर्षि को दुःख पहूचा है। उत्तर न पाकर, युधिष्ठिर और भगवान् कृष्ण के पास पहुचा। युधिष्ठिर ने पूछा कह आये ? अर्जुन भी रो पड़ा।

"आखिर बताओ तो सही ! क्या बात है—; महाराजा युधिष्ठिर ने कहा। अर्जुन ने सारा वृतांत सुनाया और पुनः रो दिया महाराज युधिष्ठिर ने पूछा, तूने कोई अपराध किया होगा अर्जुन ने कहा कि जो कुछ आप ने कहा, मैंने तो वही सन्देश ही सुना दिया। युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से पूछा, क्या बात होगी ?

भगवान् ने कहा कि महर्षि तो सामने मौजूद हैं, चल कर

पूछ लें। महर्षि के पास जब पहुंच गए तो भगवान् कृष्ण ने महर्षि से पूछा, भगवन् ! अर्जुन ने महाराज जी को क्या कहा ? कणाद ऋषि पुन: रो पड़े और कहने लगे कि अब घोर कलियुग आ रहा है जिसमें अतिथि सेवा का नाम मात्र भी न रहेगा उसके चिन्ह अभी से प्रतीत हो रहे हैं। महाराज युधिष्ठिर को इतना अभिमान आ गया कि एक महात्मा को न्योता स्वयं नहीं आकर दिया अपितु एक भृत (सेवक) के हाथ सन्देश भेज दिया। भगवान् कृष्ण ने कहा, 'भगवन् ! अर्जुन और युधिष्ठिर में तो कोई भेद नहीं। अर्जुन तो युधिष्ठिर का छोटा भाई है।'

महर्षि ने कहा ; पूछो अर्जुन से, क्या आकर कहा ? अर्जुन ने कहा, मैं ने यही आकर कहा है कि महाराजा युधिष्ठिर ने मुझे भेजा हैं कि महाराज जी को न्योता दे आओ कि कल का खाना महाराज के हां स्वीकार करें। इन शब्दों से तो यही पाया जाता है कि अर्जुन महाराजा युधिष्ठिर का भेजा हुआ एक भृत है। अतिथि सत्कार में जहां अतिथि को आसन देना आवश्यक है वहां हस्त मुख प्रक्षालन कराना, थाली परस कर उसके आगे धरना, समय समय पर अतिथि को इच्छानुसार शाक सब्जी चपाती आदि भेंट करना इत्यादि-२ सब क्रियायें शामिल है वहां न्योता देना भी एक मुख्य तथा प्रथम अंग है। उसी से तो गृहस्थी की श्रद्धा का ज्ञान हो सकता तथा अनुमान लगाया जा सकता है। यहां तो अतिथि सेवा का अभी से ही दीवाला निकलता प्रतीत हो रहा है।

जिस देश में अतिथि का आदर सत्कार और सेवा नहीं,

वह देश पतन के मार्ग पर चल रहा है और उसका विनाश निकट अति निकट आ रहा है। देश अभागा बन जाता है और उसके भयंकर परिणाम निकलते हैं।

मैं यह सब कुछ देखकर मन ही मन में कह रहा था कि यह तो निमन्त्रित भाइयों का व्यवहार है। अतिथि सत्कार का यहां क्या हाल होगा। लो, वह सुन लो !

पांच महा यज्ञ

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने तो प्रत्येक आर्य गृहस्थी को प्रति दिन पांच महायज्ञ करने का आदेश किया है ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलिवैश्व देव यज्ञ और अतिथि यज्ञ।

यह पांच यज्ञ क्या हैं और क्यों महायज्ञ कहलाते हैं।

ब्रह्मयज्ञ, ईश्वर भक्ति, सन्ध्यो-पासना, जाप तथा स्वाध्याय का नाम है।

देवयज्ञ :—को अग्नि होत्र भी कहते हैं। हवन के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करना, सुखों को खरीद करना—मनुष्य प्रतिदिन

प्रति क्षण शरीर से गन्दगी तथा मल निकालता रहता है; कभी शौच आदि के द्वारा, कभी स्वेद और श्लेष्म थूक द्वारा, कभी नाक और कान द्वारा जिस से भगवान् की स्वच्छ और पवित्र प्राणप्रद वायु दूषित हो जाती है। जितनी वायु मनुष्य दूषित करता है। उतनी उसे स्वच्छ कर देनी चाहिए, नहीं तो देवताओं का ऋण उस पर सवार रहे। और फिर वह कभी सुखी न हो सकेगा। महर्षियों ने अनुमान लगाया है कि मनुष्य प्रतिदिन जितनी वायु दूषित करता है। उतनी वह प्रतिदिन छः छः माशे की प्रातः और साय १६, १६ आहुतियां देकर स्वच्छ और पवित्र कर सकता है। इसलिए ब्रह्म यज्ञ से दूसरे दरजे पर इसको रखा है।

पितृ यज्ञ :—माता पिता गुरू आचार्य विद्वानों की सेवा शुश्रूषा करना कि जिनकी कृपा से हमारा पालन पोषण हुआ तथा शिक्षा, ज्ञान आदि हमें प्राप्त हुआ। सन्तान उत्पन्न करके उनका पालन पोषण, विद्या शिक्षा आदि का देना दिलवाना भी पितृ यज्ञ का आवश्यक अंग है।

बलिवैश्व देव यज्ञ :—च्योंटी से हाथी पर्यन्त जितने भी जीव जन्तु हैं, यह सब किसी न किसी रूप में मनुष्य की सेवा कर रहे हैं, उनका पालन तथा रक्षण भी मनुष्य का कर्तव्य है।

अतिथि यज्ञ :—साधु, सन्त महात्मा, उपदेशक, प्रचा-

रक, सुधारक, गुरू आचार्य आदि जो समय समय पर गृहस्थी का उत्थान कल्याण करने के लिए उनके घर पर आते हैं, उन का सत्कार करना, भोजन आदि से सेवा करना, यह अतिथि यज्ञ है।

प्रत्येक यज्ञ का अपना अपना फल है। मनुष्य को इस भव-सागर से पार उतरने तथा जन्म सफल करने के लिए एक निश्छल निष्कपट निस्स्वार्थ गुरू का मिलना आवश्यक है। वह केवल और केवल अतिथि यज्ञ से प्राप्त हो सकता है। यह अतिथि यज्ञ का एक महान् फल है, और अनेकों फल हैं जिनका दिग् दर्शन वेद शास्त्र के आधार पर तथा विद्वानों और महर्षियों के प्रमाणाधार पर इस लघु पुस्तक में कराने का प्रयास किया गया है।

पाठक वृन्द स्वयं इसे पढ़ सुनकर अनुमान लगा सकते तथा अनुभव कर सकते हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन में श्रीयुत वन्दनीय गुरू देव महात्मा प्रभु आश्रित स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से जो उत्साह प्राप्त हुआ है अकथनीय है। श्री महाराज जी का आशीर्वाद उनके अपने ही शब्दों में अलग पृष्ट पर दिया जा रहा है।

प्रभू देव हमें सुमति प्रदान करें कि जिस से हम यज्ञों की मर्यादाओं का पालन करते हुए देश और जाति के गौरव को पुनः प्राप्त कर सकें।

विनीत :

सत्य भूषण आचार्य
वानप्रस्थी
अधिष्ठाता
वैदिक भक्ति साधन आश्रम

रोहतक
१४-६-१६५७
३० भाद्रपद, २०१४

॥ ओ३म् ॥

द्वितीय संस्करण

२१ वर्ष के बाद

भूमिका

अध्यात्म-सुधा-५ (अतिथि सेवा) १९५७, अगस्त मास में प्रकाशित हुई थी और वह आंखों देखी घटना के आधार पर थी। आर्य समाज को स्थापित हुए १०० वर्ष से ऊपर हो चुके हैं, अभी स्वल्प काल ही बीता कि उसकी शानदार शताब्दी मनाई गई, इतना ही नहीं २ मास ही गुजरे होंगे महर्षि के वेद भाष्य की शताब्दी धूमधाम से दिल्ली में मनाई गई अब सत्यार्थ प्रकाश की शताब्दी मनाई जा रही हैं और सत्यार्थ प्रकाश को चार भागों में विभक्त कर परीक्षाओं को आयोजना कई वर्षों "से चल रही है जिस में कई लाख सज्जन् परीक्षा उत्तीर्ण कर मान पत्र प्राप्त कर चुके हैं। आर्य समाज का यह सारा कार्य अत्यन्त सराहनीय है, परिणाम स्वरूप जो सो रहे थे वह जाग उठे जागने वाले सो गए। क्या ही विलक्षण बात है। क्या कभी आर्यो की सार्वदेशिक या परादेशिक सभा ने कभी यह देखने का कष्ट भी गवारा किया कि मानव जीवन के चार फलों, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्ग पर चलने वाले स्वयं सत्य मार्ग पर चल रहे हैं या जबानी ढोल बजाना, शोर मचाना और प्रदर्शनी में अनेकों नाटकीय दृश्य दिखा संसार को मोहित कर रहे और अपना यश बढ़ा रहे हैं। इसी जीवन काल में बहुतों ने देखा होगा कि आर्य समाजी सत्य के पुतले थे, उनकी बात अथवा साक्षी को न्यायालयों में वह स्थान प्राप्त था जो

बीसियों विभिन्न मतों की "धर्मानुमार सच्च कहूंगा" कहने पर विश्वास न किया जाता था। पुत्र पिता के विरोध में गवाही देता था, आज हमें ४-२-० की उपाधि मिलती है अर्थात् पहले ४ के मानने वाले थे। और उन्हीं के लिए आचरण होता था, समयबीतने पर २ विलीन होकर दो रह गए और अब कोई धर्म ईमान नहीं रहा। ३१-७-७८ के वीर अर्जुन के दूसरे पृष्ट पर "पाठकों की बात" के शीर्षक "ईमान कहां देखता है" - अपने आप में वतमान स्थिति की निराशा जनक अवस्था प्रकट करता है।

प्यारे आर्य भाइयों ! हमारे गुरु देव महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने १४ वार विषखाई, ईंटें, पत्थर, रोडे उन पर फैंके गए, उनको बध करने के षड्यन्त्र कई बार रचे गए परन्तु अपने देश धर्म के उत्थान के लक्ष्य को जीवन प्रयन्त नहीं छोड़ा न प्रमाद दिखाया। लोहे को लोहा काटता है, अपनी जाति के हाथों से शरीर को परमेश्वर की इच्छा पर छोड़ा और दुष्ट हत्यारे पर दया कर उसकी जान बचाई। यश का आधार चरित्र है। शाब्दिक ज्ञान या वावेला नहीं। आर्यों में वह चरित्र नहीं रहा जिसकी व्याख्या महर्षि ने संस्कार विधि और सत्याथ प्रकाश में पञ्च महायज्ञों के करन की है अतिथि यज्ञ न केवल महर्षि की आज्ञा है अपितु ईश्वरीय ज्ञान वेद का फरमान है। अर्थ-व वेद के काण्ड ६ और १५ ध्यान से पढ़ें। यजुर्वेद के अनेकों स्थानों पर इसका जिक्र है। भक्ति का वेद साम् स्पष्ट रूप से कह रहा है जब तक विद्वानों का संग, आतिथ्य सत्कार भक्त (गृहस्थ) लोग नहीं करेंगे परमेश्वर को कभी नहीं प्राप्त कर सकते। देखिए सामवेद मन्त्र २८५

ओ३म् सुनोत सोम पान्वे सोममिन्द्राय वज्रिवो।
पचता पक्तिरवसे-कृणुध्वमित्पृणन्निपृणाते मयः ॥

पदार्थः

(सुनोत) तय्यार करो (सोम पान्वे) सोम पान करने वाले (सोमम्) सोम को (इन्द्राय) विद्वान के लिए (वज्रिणे) अज्ञान निवारक (पचता) पकाओ (पक्तिः) पाकों को (अवसे) रक्षा के लिए (कृणुध्वम्) करो (इत्) ही (पृणन्) पालना में तत्पर (इत्) ही (पृणते) पूरा करता है (मयः) सुख से।

वाक्यार्थ :—हे मनुष्यों ! तुम लोग सोमपायी तथा अज्ञान निवारक विद्वान के लिए सोम तय्यार करो, अपनी रक्षा के लिए उसके निमित्त पाकों को पकाओ, सारे सत्कार्यों को करो। निश्चय ही पालन में तत्पर वह विद्वान् [अतिथि] तुम्हें सुख देता है ॥

[श्री वैद्यनाथ भाष्य]

२१ वर्ष में कांग्रेस राज्य की विद्यमानता में भी आर्य समाज अतिथि सेवा प्रचार कार्य घर घर तक क्रियात्मिक रूप में न पहूंच सका चुनांचि पुहोहितों, उपदेशकों से जिस प्रकार कार्य लिया जाता है या आतिथ्य सत्कार उनका होता है वह कहने से बाहर है, लेखनी लिखन से लज्जाती है।

भाइयो और बहिनों! अतिथि यज्ञ का वास्तविक स्वरूप क्या है करने से क्या लाभ न करने से क्या हानि है आप सब विस्तारपूर्वक इस संस्करण में पायेंगे। अम्बाला छावनी की एक देवी पुत्री विजय राणी गुप्ता ने कितने दर्द भरे शब्दों में अपने विचार व परा-

मर्श आर्य जाति को दिए हैं, उनको ध्यान से पढ़ें और जीवन संवार सुधार करे। हम उनका इस लेख के लिए आभार प्रकट करते हैं और मङ्गलमयी मां से प्रार्थना करते हैं। कि अभिमानी प्रमादी व अज्ञानी भाई बहिनों को सुमति शक्ति साधन और योग्यता प्रदान करें कि तेरे सच्चे अमृत पुत्र अतिथि का जो दर-२ घूम कर श्रेष्ठता, व्यवहार चरित्र और आर्य धर्म का प्रचार करते हैं, उनका आदर सत्कार करते हुए उनके सत्संग व आशीर्वाद से लाभ उठाए और देश को समुन्नत करें।

रोहतक
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
१५ श्रावण, २०३५ वि०
दयानन्दाब्द १५३

मङ्गलाभिलाषी :
विज्ञानानन्द सरस्वती



॥ ओ३म् ॥

—:: १ ::—

अतिथि कौन है ?

अथर्व वेद में आया है :—

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महोदधत् ।
गृहे वसतु नो अतिथिः ॥ अ. १०-६-४ ॥

भा०—(हिरण्यस्रग्) स्वर्ण माला धारी (मणिः) मणि समान अर्थात् शिरोमणि अत्यन्त आदरणीय (अयं अतिथि) यह अतिथि (श्रद्धां) श्रद्धा को, (यज्ञं) यज्ञ परोपकार आदि शुभ कर्मों को तथा (महः) बड़प्पन—मान्य को (दधत्) धारण करता हुआ (नः गृहे वसतु) हमारे घर में वास करे।

भावार्थ :—एक सद्गृहस्थी भक्त कामना करता है कि हे प्रभो ! यह शिरोमणि पुरुष सुवर्णमाला धारण करने वाला होकर भी ईश्वर और धर्म कार्य में श्रद्धा अर्थात् सत्य में धारणावती बुद्धि को, यज्ञ और तेज को धारण करे और हमारे घर में अतिथि हो कर निवास करे।

इस मन्त्र में अतिथि के लक्षण बताए हैं।
अतिथि वह है जिस के अन्दर यह पांच गुण हों :—

१- **हिरण्यस्त्रक्** हो अथात् स्वर्ण माला पहन रखी हो । इस के दो भाव हैं । (क) अतिथि के गले में बहुमूल्य स्वर्णमाला डालें अथवा उसका बहुमूल्य पदार्थो से स्वागत तथा सत्कार करें । (ख) अतिथि हिरण्यमय पदार्थों की माला वाला हो अर्थात् सर्व प्रकार की मूल्यवान् गूढ़ विद्याओं से सम्पन्न हो जिससे जनगण का कल्याण हो कके ।

२- **मणि समान हो** । मणि [हीरा] रजत, स्वर्ण अथवा पत्थर की मूल्यवान तथा उपयोगी होती है अर्थात् अतिथि मानव समाज में अपने सद्‌गुणों तथा चरित्र से ऐसा देदीप्यमान हो कि उसे मणि की उपमा दी जा सके । सर्व समाज में शिरोमणि हो ।

३- **स्वयं श्रद्धावान् हो** । लोगों के अन्दर श्रद्धा पैदा कर सके ।

४- **यज्ञ स्वरूप हो**, लोगों को यज्ञमय जीवन बनाने में रुचि पैदा कके, स्वयं सत् कर्म करता हो और लोगों को सत्कर्मी बना सके । लोग उसके आहार विहार तथा अचार को देख कर उसका अनुकरण करें ।

५- **स्नेहवान् हो** । सर्व साधारण से उसे ऐसा प्रेम हो जैसे माता पिता को अपनी सन्तान तथा परिवार से होता है और पुनः पुनः लोगों को कल्याण के साधनों का उपदेश कर सके ।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने बताया :—

कि अतिथि वह होता है "जिसकी कोई तिथि निश्चित न अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ

सर्वत्र घूमने वाला पूर्ण विद्वान्, परम योगी, सन्यासी गृहस्थ के यहां आवे—"

सत्यार्थ प्रकाश अठाईसवां संस्करण—पृष्ट—६२

इसी प्रकार संस्कार विधि में "अथतिथि यज्ञ" के शीर्षक में कहा कि—जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारक, विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथि यज्ञ कहाता है, उसको नित्य किया करें।"

अर्थात् अतिथि वह है, जो धर्मात्मा हो, जिसका जीवन परोपकारमय हो, जो सद् विद्याओं का प्रचार करता हो, जो पक्षपातरहित हो, शान्त स्वभाव हो और सब का हित चाहने वाला विद्वान् हो, जो इसके विपरीत है, वह अतिथि नहीं।

१. जो विद्वान् है परन्तु धर्मात्मा नहीं।
२. जो धर्मात्मा है परन्तु सर्व हितकारक नहीं।
३. जो विद्वान् भी है, धर्मात्मा भी है परन्तु शान्त स्वभाव नहीं।
४. जो गृहस्थी के घर गृहस्थी के कल्याणार्थ अर्थात् गृहस्थी को सत् पथ दर्शाने के लिए नहीं अपितु अपने शारीरिक सुख के लिए निवास करना चाहता है।
५. मित्र, सम्बन्धी अथवा व्यवहारी पुरुष जिनको मेहमान तो कहा जा सकता है, वह अतिथि नहीं। मनु-३-११०
६. भिक्षुक, याचक जिन्होंने भिक्षा को अपना व्यवसाय बना रखा है, वह अतिथि नहीं।

-:: २ ::-

अतिथि यज्ञ की देवयज्ञ से तुलना ।

अब प्रश्न होता है कि अतिथि सेवा को यज्ञ का रूप क्यों दिया गया है? उत्तर स्पष्ट है अतिथि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, सर्वहितकारी, शान्त विद्वान् को कहते हैं। अतिथि के सत्सङ्ग से मनुष्य जीवन का सुधार होता है, इस लिए अतिथि देव है। देव पूजा सङ्गति करण और दान यज्ञ है। अतिथि विद्या का दान करता है, गृहस्थी उससे सङ्गति करण करता और प्रतिकार में उसकी पूजा करता है, इस लिए अतिथि सेवा यज्ञ है।

वेद में तो अतिथि यज्ञ की देव यज्ञ से तुलना की गई है। अथर्व वेद के नवें काण्ड के छठे सूक्त के निम्न मन्त्रों से यह भाव बहुत स्पष्ट है :—

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन्
प्रति पश्यति देवयजने प्रेक्षते ॥ ९-६-३

भा०-(यद्वा) और जब (अतिथि पतिः) अतिथियों का पालक गृहस्थी (अतिथीन् परिपश्यति) अतिथियों की प्रतीक्षा करता है वह (देवयजने प्रेक्षते) एक प्रकार के देवयज्ञ करने का ही सङ्कल्प करता है।

मानो अतिथि की प्रतीक्षा देवयज्ञ का सङ्कल्प है ।

सङ्कल्प के बाद देवयज्ञ की दीक्षा लेनी होती है उस सम्बन्ध में आगे के मन्त्र में बतालाया :—

यदभिवदति दीक्षामुपैति

यदुदकं याचत्पयः प्रणयति ।४।

अर्थात् जब वह गृहस्थी अतिथि का अभिवादन – नमस्कार करता हैं, तो वह अतिथि यज्ञ में दीक्षा प्राप्त करता है और जो जल पात्र को लाकर अतिथि को अर्घ्य-पाद्य-आचमनीय (अर्थात् मुख, पाद धोने तथा आचमन के लिए) जल देता है तब मानो वह देवयज्ञ में (अपः प्रणयति) जलों का प्रोक्षण करता है अर्थात् कुण्ड के चारों ओर जल सींचता है ।

मुख-पाद्य प्रक्षालन आदि के पश्चात् अतिथि को खाने को कुछ भेंट करना चाहिए, तो आगे वेद भगवान् ने बतलाया :—

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः

पशुर्बध्यते स एव सः ।६।

भा०—जो अतिथि को तृप्त करने के लिए मधुपर्क आदि

उत्तम पदार्थ लाया जाता है, वह मानो अग्निषोम याग में जो पशु यूप में बांधा जाता है यह वह है ॥७॥

यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ।८।

भा०—जो अतिथि के लिए खाट आदि बिछाई जाती है, वह यज्ञ का आसन है ॥८॥

यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमवरुन्द्धे ।९।

भा०—जो अतिथि के लिए चारपाई पर गद्दा आदि बिछाते हैं, वह यज्ञ में स्वर्ग अर्थात् इष्ट सुख को प्राप्त करते हैं ॥९॥

यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव सः ।१०।

भा०—जो अतिथि के लिए चादरें और सिरहाना लाक बिछाते हैं वह यज्ञ में 'परिधि' के समान है।

यदाञ्जाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत्

भा०—और जो आंखों के लिए अञ्जन और शरीर के लि तेल अथवा उबटन आदि लाते हैं, वह यज्ञ में घृत समान है ॥ ११ ॥

यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरडाशावेव तौ ।१२।

भा०—जो गृहस्थी लोग भोजन से पूर्व प्रातराश लाते हैं, वह यज्ञ में दोनों पुराडाशों के समान ही है ॥ १२ ॥

यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्धवयन्ति ॥ १३ ॥

भा०—और जो अतिथि के लिए चतुर प्रवीण रसोइया को बुलाते हैं, वह यज्ञ में हवि अर्थात् चरु तय्यार करने वाले पुरुष के समान है ॥ १३ ॥

इसी प्रकार आगे के मन्त्रों में बताया गया है कि जो अतिथि यज्ञ के अवसर पर धान और जौ प्राप्त किए जाते हैं, वे यज्ञ में सोमलता के खण्ड के समान हैं और जो ओखली और मूसल धान कूटने में वरते जाते हैं वे यज्ञ में सोम कूटने के उपयोगी पत्थरों के समान हैं। छाज जिस से धान साफ किया जाता है वह सोम छानने के "दशा पवित्र" (ऊनी वस्त्र) के समान है अतिथि के भोजन वनाने के लिए जल प्रयुक्त होता हैं वह यज्ञ में सोमरस में किलाने योग्य विशेष प्रकार की जल धाराओं के समान है। कड़छी स्रवे के समान है। दाल आदि के बनाते समय जो दाल को चलाने आदि का कार्य किया जाता है वह यज्ञ में सोम-रस को बार बार मिलाने का काम है। भोजन पकाने के पात्र यज्ञ में द्रोण कलश के समान है। भोजन खिलाने के पात्र सोमपान कराने के पात्र हैं और जिस भूमि पर अतिथि को बिठाया जाता है वह यज्ञ में कुशा मृगछाला के समान है ।

उपसंहार

इस सूक्त के मन्त्रों से यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि झाड़ू आसन आदि से लेकर आतिथ्य सत्कार के लिए भोजन आदि की तय्यारी करना, पाचक को लगाना, ओखल मूसल छाज आदि पात्रों का प्रयोग करना देव यज्ञ की प्रत्येक क्रिया के साथ उनका सम्बन्ध है। अतिथि यज्ञ की तय्यारी देव यज्ञ की तय्यारी है और अतिथि यज्ञ का करना देव यज्ञ करने के समान है।

अब अगले सूक्त में अतिथि सत्कार की किन किन क्रियाओं का देव यज्ञ की क्रियाओं से सम्बन्ध है, यह दिखाया है। यह सूक्त है। ६ (२)

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते
यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया इदामिति ॥ १ ॥

भा०—जिस समय अतिथिपति=गृहस्थी अतिथि को देने योग्य पदार्थों और भोजन में उपस्थित करने योग्य पदार्थों पर दृष्टिपात करता है और अतिथि को अधिक देने के लिए निरीक्षण करता है कि (इदंभूयः) यह भाग फिर हो और (इदं) यह भी, तो इस प्रकार गृहस्थी अतिथि के प्रति उसी कर्म को करता है जिस कर्म को यज्ञों में यजमान ऋत्विक् के प्रति करता है॥

यदाहभूय उद्धरेति प्राणमेव तेन
वर्षीयांसं कुरुते ।२।
उप हरति हवींष्या सादयति ।३।

भा०—और जब गृहस्थी कहता है कि भगवन् ! (भयः उद्हर) यह आहार योग्य पदार्थ और अधिक लीजिए तो इस कथन के करते हुए वह प्राण के देने वाले अन्न को और अधिक उपस्थित करता है और जब वह अन्न आदि पदार्थ उसके समीप लाता है तो वह मानो यज्ञ की अन्नमय हवियां उसके सभीप उपस्थित करता है ॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ।४।

भा०—अन्न आदि पदार्थों के उपस्थित हो जाने पर अतिथि उस भोजन को अपने मुख में आहूति देता है, उसे खा लेता है।

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे
स्रुक्कारेण वषट्कारेण ।५।

भा०—हाथ रूपी चमस से प्राणरूपी यूप के समक्ष खाते समय 'सरूक्' इस प्रकार के शब्द रूपी 'स्वाहा' शब्द के साथ अपनी जाठराग्नि में आहुति देता है।

एतोवैप्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्ग लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥६॥

भा०—यह जो अतिथि हैं, चाहे प्रिय हों अथवा अप्रिय तो भी उन यज्ञकर्ता ऋत्विजों के समान हैं जो यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराते हैं ॥

नोट :—जिसके मित्र भाव में सन्देह हो या जो उस पर सन्देह करता हो दोनों एक दूसरे का अन्न न खावें।

सर्वो बा एषो जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥८॥

भा०—वे सब लोग अपने पाप नष्ट कर लेते हैं जिसके अन्न को अतिथि लोग खा लेते हैं। अर्थात्

सर्वो वा एषो जग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥९॥

जिस के अन्न को अतिथि स्वीकार नहीं करते उन सब के पाप नष्ट नहीं होते ॥

इसी सूक्त के अगले मन्त्रों में बताया कि जो अतिथियों की सेवा, सत्कार क ता है, उसके मानो सदा सोम तय्यार होता रहता

है और जो अतिथियों का अर्घ्य, पाद्य, अन्न आदि से सदा सत्कार करता रहता है, उसका प्राजापत्य यज्ञ चलता रहता है अर्थात् जिस प्रकार प्रजापति सब को सदा अन्न देकर अपने प्राजापत्य यज्ञ को कर रहा है, इसी प्रकार अतिथि को भी अन्न देकर गृहस्थ जीवन में सदा प्राजापत्य यज्ञ रचाए रखता है। यज्ञ की तीन प्रकार की अग्नि है, आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि। अतिथि की शरीराग्नि आहवनीय अग्नि है।

गृहस्थी स्वयं गार्हपत्य अग्नि के समान है।

और जिस अग्नि में गृह मेधी लोग अन्न आदि पकाते है। वह दाक्षिणग्नि के तुल्य हैं।

अर्थात् अतिथि की सेवा करने को त्रिणाचिकेत अग्नि का फल मिलता है।



॥ ओ३म् ॥

-:: ३ ::-

अतिथि यज्ञ न करने से हानियां

ऐसे महान् यज्ञ के करने की वेद भगवान् ने आज्ञा की और उसका प्राचीन ऋषि मुनियों और शास्त्रों ने भी समर्थन किया है। इस यज्ञ के न करने से जो हानियां होती हैं, वह पवित्र अथर्व वेद काण्ड ९, सूक्त ६ (३) में देखिये:—

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥१॥

भा० :—जो पुरुष अतिथि से पहिले भोजन कर लेता है वह अपने गृह के सम्बन्धियों के और अपने यज्ञों और प्रजा के हितकारी कूप, तड़ाग अन्य कार्यों को भी स्वयं खा जाता है अर्थात् विनाश कर देता है। इन महान् परोपकार के कार्यों का जो शुभ फल उसे अथवा उस के सम्बन्धियों को मिलना था वह सब नष्ट हो जाता है। इस लिए अतिथि से पहले नहीं खाना चाहिए।

पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥२॥

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ३ ॥

प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ४ ॥

कीर्ति च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ५ ॥

श्रियं च वा एष संविदं च गृहणामश्नाति यः
पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ६ ॥

भा०—जो पुरुष अतिथि के भोजन करने से पहिले स्वयं भोजन कर लेता है वह :—

२- घर के दुग्धादि पदार्थ और रसवान् स्वादु पदार्थों को नष्ट कर देता है।

३- वह घर की अन्न सम्पत्ति और समृद्धि को भी नष्ट कर देता है।

४- वह घर की प्रजाओं (सन्तान तथा भृत्य आदि) और पशुओं को भी नष्ट कर देता है।

५- घर की कीर्ति और यश तक को भी नष्ट कर देता है।

६- वह घर की लक्ष्मी और सौहार्द भाव को भी नष्ट कर देता है।

क्योंकि वह अतिथि के शुभागमन से गृहस्थी को सदा सन्मार्ग पर चलने वाले उपदेश मिलते रहते हैं, उन उपदेशों के न मिलने से उपरोक्त सब पदार्थों की उन्नति नहीं होने पाती।

"इस लिए अतिथि से पहिले कभी नहीं खाना चाहिए क्योंकि"—

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ।७।

भा–वह अतिथि निश्चय से श्रोत्रिय अर्थात वेद के विद्वान् ब्राह्मण के समान पूजनीय है इस लिए ....

अतिथि के भोजन कर चुकने पर ही गृहस्थी भोजन करे, क्यों कि आगे कहा है :—

अशितावात्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छे तद् व्रतम् ॥८॥

भा०—गृहस्थी यदि चाहता है कि उसका यज्ञ सम्पूर्ण सफल हो, विच्छेद और विनाश न हो तो अतिथि के भोजन कर चुकने पर भोजन करे। यही व्रत करले, धर्माचरण है।

❖★❖

नचिकेता की कथा

नचिकेता ने अपने पिता को देखा कि वह अपना सारा धन, गौ आदि पशु जो कुछ भी था - इस विचार से कि जब तक सर्वस्व त्याग न किया जाए, मुक्ति प्राप्त नहीं होगी, दान

कर दिया । पशुओं में ऐसी गौएं भी थीं जो बूढ़ी थीं, दूध पिला चुकी थीं, चारा भी नहीं चर सकती थीं, सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं रही थीं, ऐसे दान को देकखर नचिकेता के मन में विचार आया कि पिता जी यह क्या कर रहे हैं। उसने पढ़ सुन रखा था, "जैसा बोवोगे वैसा काटोगे, जैसा दान करोगे वैसा फल मिलेगा।"—इस प्रकार की गौएं दान करने से पिता जी को तो स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता और सत्य पूछिए तो ऐसी गौओं का दान, दान कहलाने के योग्य भी नहीं, यह तो कृतघ्नता है कि जब तक तो वे दूध पिलाती रहीं, तो नचिकेता के पिता ने अपने पास रखीं अब जब वे बेकार हो गई हैं उनको घर से निकाल देना चाहता है। कृतघ्नता से बढ़ कर कोई पाप नहीं। मेरा पिता पुण्य के स्थानापन्न पाप कर रहा है। दान तो मूल्यवान वस्तु का ही करना चाहिए। मुझ से बढ़ कर और कौन सी वस्तु पिता जी के पास हो सकती है अतः बच्चे ने साहस कर के पिता जी को कहा, पिता जी ! सब कुछ दान कर रहे हो, मुझे किस को दोगे। एक बार नहीं, तीन बार कहा। पहिली बार ता पिता ने अनसुना कर दिया, दूसरी और तीसरी बार कहा, तो पिता को क्रोध आ गया और क्रोधवश पिता ने कहा, जा, तुझे यम (मृत्यु) के हवाले करता हूं।

नचिकेता पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर यम के गृह पर चला गया। यम जी घर पर नहीं थे। परिवार वालों ने एक ब्राह्मण अतिथि को द्वार पर आया देखकर उसकी सेवा शुश्रुषा करनी चाही परन्तु नचिकेता ने यम से भेंट होने से पहिले सेवा स्वीकार करना पिता की आज्ञा का भंग समझा, इस लिए तीन दिन रात्रि भूखा प्यासा यम के द्वार पर यम के

आगमन की प्रतीक्षा में पड़ा रहा। यमाचार्य जब घर पर आए तो परिवार वालों ने अतिथि के आगमन तथा उसके भूखा प्यासा रहने के समाचार से उन्हें अवगत किया तो यमाचार्य ने जा कर सर्व प्रथम नचिकेता को प्रणाम किया और कहा कि आप तीन दिन रात्री मेरे गृह पर भूखे प्यासे रहे हैं, अतिथि को इस प्रकार रहने से गृहस्थी को पाप लगता है, उसका मुझ से तीन वर मांगे, जब तक आप प्रसन्न नहीं होंगे न मेरा प्रायश्चित पूरा हो सकता है। और न ही मेरा पाप दूर हो सकता है। अनजाने पाप का प्रायश्चित होता है। यमाचार्य ने जान बूझ कर कोई पाप नहीं किया था, वह तो घर में उपस्थित ही नहीं था। इस लिए आचार्य जी ने आग्रह किया क्योंकि कहा है :—

आशा प्रतीक्षा संगतं सूनृताञ्चेष्टा-
पूर्तेपुत्रपशुंश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्य अल्पमेधसो यस्या-
नश्नन् वसति ब्राह्मणे गृहे। कठ-वल्ली १-श्लोक-८

भा०—लाभदायक वस्तु की कामना आशा, वस्तु की प्राप्ति की कामना का नाम प्रतीक्षा हैं। इन दोनों का सत्संग से प्राप्त होने वाले फल को, मधुर वाणी को, यज्ञ आदि कर्मों के फल को और बावली, कुआं, तालाब, अनाथालय, धर्मशाला आदि बनवाई के फल को, पुत्र, पौत्र, गौ, भैंसे आदि पशुओं को और सब को अर्थात् इन सब के फल का नाश कर देता है उस

अल्प बुद्धि वाले मनुष्य का कि जिसके गृह में भोजन बिना ब्रह्मनिष्ठ, वेद वेत्ता अतिथि वास करता है।

अर्थात् यदि भाग्यवश ऐसा वेद वेत्ता, ब्रह्मनिष्ट प्रभु भक्त अतिथि गृहस्थी के द्वार पर आ जाए और भोजन न करे तो गृहस्थी के सब पुण्य कर्मों के फल का नाश हो जाता है।

इसलिए गृहस्थी को सावधान होना चाहिए।

इस लिए वेद भगवान् ने आज्ञा की :—

एताद् वा उस्वादीयो यदधिगवं क्षीरं मांसं वा तदेव नाश्नीयात ॥९॥

भा० - वही पदार्थ खाने योग्य स्वादिष्ट होता है जो पृथ्वी में प्राप्त होता है जैसे दूध तथा दूध से उत्पन्न पदार्थ मलाई, रबड़ी, मोदक आदि, अन्न, आदि पदार्थ, वा फलों का गूदा, रस, उसी पदार्थ को गृहस्थी अतिथि से पहिले न खावे।

इस मन्त्र में जहां यह बताया कि अतिथि से पहिले नहीं खाना चाहिए वहां यह भी स्पष्ट रूप से आज्ञा की कि अतिथि को स्वादु, मूल्यवान् पदार्थ खिलाने चाहिए।

मनु महाराज ने भी लिखा है कि गृहस्थी को चाहिए कि अतिथि के पीछे भोजन करे। मनु० ३-११५

इस में थोड़ा सा विकल्प भी बताया है कि सुवासिनी (जिस का अभी विवाह हुआ हो), कुमारी, रोगी, तथा गर्भिणि को अतिथि के पहिले बिना विचारे भोजन करा देना चाहिए।
मनु-३-२१४

पहिले भोजन कर लेने का फल बताया गया है:—

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं
भुङ्क्तेऽविचरणः।
सुभुञ्जानो न जानात्तिश्वागट
धैर्जग्धिमात्मनः ॥

भा०—जो मूर्ख इनको बिना दिए पहिले भोजन करता है, वह नहीं जानता कि कुत्ते और गीधों से अपना भक्षण (मरण के अनन्तर) होगा ॥ मनु-३-११५ ॥

भुक्तवस्वथ बिप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं
तु दम्पती ॥ ७-११६ ॥

भा०—ब्राह्मण और पोष्य वर्ग (नौकर आदि) यह सब भोजव कर चुके, तत्पश्चात् बच्चों को, गृहस्थ आप और स्त्री भोजन करें। अर्थात् ब्राह्मण, अतिथि और नौकरों को पहले खिला कर फिर स्त्री पुरुष स्वयं भोजन करें।

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृ गृह्याँश्च देवताः ।
पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ।११७
अधं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते । ११८।

भा०—देव, ऋषि, मनुष्य, पितर और सब देवता—इन सब को सत्कृत करके पश्चात् गृहस्थ शेष अन्न का भोजन करने वाला हो ॥ ११७ ॥ जो केवल अपने लिए अन्न पकाता है वह निरा पाप खाता है और जो यज्ञ आदि से शेष भोजन है, वह सज्जनों का भोजन है ॥ ११८ ॥

आगे चल कर मनु जी महाराज ने कहा :—

ऋषि यज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्तिन हापयेत् ॥ ४१ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् । होमो
दैवो बलि भौतोनृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥ मनु ३—७०

अर्थात् जहां तक हो सके ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, अतिथि यज्ञ और पितृयज्ञ को न छोड़े ॥ ४ । २१ ॥

नृयज्ञ—अतिथि की सेवा सत्कार करना है ।

अहन्यहनि ये त्वेतानकृत्वाभुञ्जते स्वयं ॥
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न संशयः ॥

महाभारत ॥ १०४ । १६ ॥

अर्थात् प्रतिदिन जो इन महायज्ञों को किये बिना खाते पीते हैं, वे नर केवल मल खाते हैं; वस्तुतः इसमें संशय नहीं है ।

॥ ओ३म् ॥

-: : ४ : :-

अतिथि यज्ञ क्यों करना चाहिए ?

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में लिखा, जब अतिथि गृहस्थ के यहां आवे तो तो उसका प्रथम पाद्य अर्घ और आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कार पूर्वक बिठा कर खान पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा शुश्रूषा करके उसको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्संग कर उन से ज्ञान विज्ञान आदि जिन से धर्म अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रखे। समय पा के गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं परन्तु—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्। हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ मनु ४-३०

भा०—(पाषण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेद विरुद्ध आचरण करनेहारा (विकर्मस्थ) जो वेद विरुद्ध कर्म का कर्त्ता मिथ्या भाषणादियुक्त, जैसे बिडाल (बिल्ला) छिप और स्थिर रह कर

ताकता झपट से मूषे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है वैसे जनों का नाम (वैडालवृत्तिक) (शठ) अर्थात् हठी दुराग्रही, अभिमानी, आप जाने नहीं औरों का कहा माने नहीं. (हैतुक) कुतर्की व्यर्थ बकने वाला जैसे कि आजकल के वेदान्ती (कहते) हैं। हम ब्रह्म और जगत मिथ्या है, वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है इत्यादि गपोड़े हांकने वाले (वकवृत्ति) जैसे वक (बगला) एक पैर उठा ध्यानावस्थ के समान होकर झट मच्छी प्राण हरके अपने स्वार्थ सिद्ध करता है वैसे आजकल के वैरागी और खाकी आदि हठी दुराग्रही वेद विरोधी हैं ऐसे का सत्कार वाणीमात्र से भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि इनका सत्कार करने से ये वृद्धि को पाकर संसार को अधमयुक्त करते हैं। आप तो अवनति के काम करते ही हैं परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबो देते हैं। इन पांच महायज्ञों का फल यह है— (आगे फल लिखा है)—"जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती, उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थियों को सहज से सत्यज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्य में एक ही धर्म स्थिर रहता है। बिना अतिथियों के सन्देह निवृत्ति नहीं होती, सन्देह निवृत्ति के बिना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के बिना सुख कहां?" ऋषि के शब्द कितने स्पष्ट हैं। प्रत्येक मनुष्य को सुख की इच्छा बनी रहती है. अनेकों प्रयत्न करने पर भी सुख प्राप्त नहीं होता। कोई धन जोड़ने में सुख मानता है, कोई सन्तान में सुख मानता है, कोई स्वस्थ शरीर में सुख मानता है, कोई भव्य भवन और ठाठ बाठ

में सुख मानता है, कोई यश और कीर्ति में सुख मानता है, जितने मुंह उतनी बातें । धनी से पूछो, तू सुखी है ? कहेगा नहीं । धन उपार्जन करने में दुःख, पैदा करके रक्षा करने में दुःख, धन के चले जाने पर दुःख, अपव्यय करने पर दुःख इत्यादि दुख ही दुःख है । इसी प्रकार अनाज्ञाकारी, लम्पट सन्तान के होने में दुःख, शरीर स्वस्थ हो परन्तु चिन्ताओं का घर बन रहा हो तो कैसा सुख है, भव्य भवन हों, साजो सामान से सज्जे हुए परन्तु यदि सन्तान न हों और अपनी जाठराग्नि भोग के योग्य न हो तो कैसा सुख ।

वस्तुतः सुख क्या है, यह तब तक ज्ञान नहीं हो सकता, जब तक मनुष्य धर्म के स्वरूप को नहीं समझता, धर्म के के स्वरूप समझ लेने पर ही दृढ़ निश्चय हो सकेगा । दृढ़ निश्चय नहीं होता जब तक संदेह बना रहे । संदेह को निवृत्त अनुभवी विद्वान् ही कर सकता है । गृहस्थी को इतना समय कहां कि सन्देह निवृत्ति के लिए विद्वानों के पीछे मारे मारे फिरें । ऋषि महर्षियों तथा आप्त जनों ने हमारे लिए, सर्व साधारण के लिए जो मर्यादाएं बांधी, वही हमें माननी चाहिए और उन्हीं का पालन करना चाहिए । ऐसे विद्वान् जो सर्वत्र लोक कल्याण के लिए हीं घूमा करते हैं, वही अतिथि हैं और उनकी सेवा शुश्रूषा करके उन से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति करना ही अतिथि यज्ञ का अभीष्ट है । अतिथि यज्ञ न हो तो धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति भी कठिन हों जावे । इस लिए इस की आवश्यकता है ।

महर्षि आपस्तम्ब का कथन है ।

"जब कोई अतिथि घर पर आवे तो उससे मधुर भाषण करो दुग्ध आदि पेय तथा भोज्य पदार्थों से सत्कार करें ।

महात्मा विदुर ने आदेश किया :—

मानव की भावना सदा यह होनी चाहिए कि "मेरे कुल में कोई वैर करने वाला न हो, राज अथवा मन्त्री दूसरों का धन हड़पने वाला न हो, मित्र, द्रोही, कपटी, तथा झूठ बोलने वाला भी न हो और कोई भी मनुष्य अतिथियों और विद्वानों को भोजन देने से पहिले स्वयं भोजन करने वाला भी न हो।

महर्षि गौत्तम का उपदेश –

अतिथि का अवश्य मान करो। यदि अतिथि विद्वान् भी न हो परन्तु सदाचारी हो उसका भी आसन, जल, और स्थान से सम्मान करो। यदि यह भी नहीं हो, तो कम से कम प्रिय वाणी से तो अवश्य सत्कार करो। अतिथि का मान अवश्य करो। अतिथि को दोउससे उत्तम स्वयं न खाओ क्यों कि शास्त्रों नें कहा है :—

तृणानि भूमिरुदकंवाक् चतुर्थी चसूनृता।
एतान्यापि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

अर्थात् तृण आसन, विश्राम के लिए स्थान, जल और चौथे अच्छा बोलना, यह चार बातें भी सत्पुरुषों के कम रहती ही नहीं। मनु ३-१०१॥

मनु महाराज ने ३-९९ में कहा :—

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदाद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥

अर्थात् आए हुए अतिथि के लिए यथाशक्ति आसन; जल और अन्न सत्कृत करके (श्रद्धा से) विधि पूर्वक देवे ॥

महर्षि वशिष्ठ जी ने आज्ञा की :—

कि 'राजा उस ग्राम के निवासियों को दण्ड दें जहां वेद विद्याहीन और स्वधर्म की पालना न करने वाले भिक्षा मांग कर खाते हों क्योंकि वे लुटेरों को भोजन कराते हैं।'

महर्षि वेद व्यास जी का कथन है—

"गृहस्थी मनुष्यो! सदा इस बात का ध्यान रखो कि मेरे घर पर आया हुआ कोई ब्राह्मण, साधु, अतिथि, विद्वान और तपस्वी भूखा तो नहीं रहा, उसके आदर सत्कार में कोई कमी (त्रुटि) तो नहीं रही"।

अतिथि को सचेत करते हुए आचार्यों ने यह आज्ञा दी कि—

नाभ्युथान क्रिया तत्र नाऽलापा मधुराक्षर
गुण दोष कथा नैव तत्र हर्म्येन गम्यते ॥

पच तन्त्र—मित्र लाभ ६८

अर्थात्—जहां जाने से अभ्युथान किया (अभ्यागत को देख कर आदर पूर्वक उठना) न हो, और मधुर शब्दों से संभाषण न हो तथा गुण दोष की चर्चा न हो, ऐसे घर पर न जाना चाहिए ॥

इस लिए गृहस्थी को अतिथि यज्ञ का सदा सेवन करना चाहिए क्यों कि कहा है :—

देवतातिथि भृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति

मनु–६–७२

अर्थात्—देवता, अतिथि भृत्य, माता पिता आदि और आत्मा इन पांचों को अन्न न दे तो जीता हुआ भी मरे के तुल्य है है। उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि जि I किसी गृहस्थी को अपने आत्मकल्याण की इच्छा हो, वह अतिथि यज्ञ अवश्य करे।



॥ ओ३म् ॥

-: : ५ : :-

अतिथि यज्ञ का महान् फल

यद्यपि ऊपर की पंक्तियों में अतिथि यज्ञ के न करने से होने वाली हानियों का दिग्दर्शन कराया गया, ऋषि और महर्षियों की आज्ञाओं के उल्लेख से भी अतिथि यज्ञ की अत्यन्त आवश्यकता पर बल दिया गया है, शास्त्र मर्यादा का पालन भी मानव धर्म का विशेष अंग माना गया है, तो इससे यही प्रतीत होता है कि अतिथि यज्ञ के करने से जहां मनुष्य को अपने जीवन को समुन्नत बनाने का आदेश तथा शिक्षा समय समय पर मिलती रहेगी, वहां मानव जीवन के चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति का अधिकारी बन जाएगा। इसलिए अतिथि यज्ञ का स्पष्ट फल तो मनुष्य को मोक्ष का अधिकारी बनाता है परन्तु वेद भगवान् ने इस बारे में विस्तार से अपने आदेशों को समझाया है और वह इस प्रकार हैं :—

स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति।

अथर्व ६-६-(४)-११

भा०—जो इस प्रकार अतिथि सत्कार की आवश्यकता (व्रत) को जानता हुआ दूध को पात्र में डालकर अतिथि को पान कराने के लिए लाता है तो—

यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥२॥

भा०—जितना श्रद्धा से किए गए अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है उतना फल इस प्रकार के आतिथ्य से गृहस्थ को प्राप्त होता है ॥२॥

स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥ ३ ॥
यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

भा०—जो इस प्रकार श्रद्धा से अतिथि के लिए घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ पात्र में रख कर लाता है तो उत्तम रीति से सम्पादित अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

इसी प्रकार आगे के चार मन्त्रों में बताया कि जो मधु आदि पदार्थ भेंट करता है उसे 'सत्र सद्म' नाम के यज्ञ का फल और जो मलाई, फल आदि पदार्थो का भेंट करता है उसको "द्वादशाह" यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

अब यदि गृहस्थी के पास इन वस्तुओं का अभाव हो तो वेद भगवान् ने आज्ञा की, कि—

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ९ ॥
प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानाभवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ १० ॥

भा०—जो इस प्रकार अतिथि यज्ञ के महत्व को जानता

हुआ पुरुष अतिथि निमित केवल जल को ले आता है वह प्रजा (सन्तान) को उत्तम रीति से उत्पादन करने में समर्थ होता है अर्थात् गृहस्थ के अधिकार के योग्य होता है और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है और अपनी प्रजाओं का प्यारा होता है। जो इस प्रकार जानता हुआ जल भी अतिथि को प्रदान करता है, वह भी इस फल को प्राप्त होता है, फिर औरों का तो कहना ही क्या ?

इस सूक्त को (६) पर्याय में अतिथि यज्ञ की यज्ञ-कार्य से तुलना करते हुए वेद ने मर्म की बात कही :—

यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते
चमसाध्वर्यंव एव ते ॥ अ ९-६ (६)-३
तेषां न कश्चाहोता ॥४॥

भा०—जव (परिवेष्टारः) रसोई सरसने वाले लोग भोजन के पात्र हाथ में लेकर (पूर्वे च अपरे च) अगले और पिछले (प्रपद्यन्ते) आ पहुंचते हैं (चमसाध्वर्यवः एव ते) वे मानो चमस लेकर यज्ञ करने वाले लोग ही हैं। (तेषांकश्चन् न अहोता) उनमें से कोई भी ऐसा नहीं होता जो आहुति न देता हो। वे अतिथि को भोजन परसते हुए मानो हवि की आहुनि दे रहे होते हैं।

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य
गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥ ५ ॥

यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति
यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥ ६ ॥

भा०—और जब अतिथियों का पालक गृहस्थ अतिथियों को भोजन परोस कर उनको पूर्णतया तृप्त करके (मृहान् उप उद् आ एति) पुनः अपने गृह को अथवा अपने सम्बन्धियों के पास आता है मानो (तत् अवभृथव् एव आ एति) अवभृथ (जो यज्ञ की समाप्ति पर यजमान करता है) स्नान ही कर लेता है ॥५॥ और जब वह (सभागयति) उनको कुच्छ धन द्रव्य भेंट करता है तो मानो (दक्षिणाः सभागयति) वह यज्ञ में पुरोहितों की दक्षिणा प्रदान करता है और (यत्) जब (अनुतिष्ठते) उनकी विदाई के लिए कुछ दूर तक उनके साथ जाता है तो तब (उद्अवस्यति एव) यज्ञ का उदवसान करता है यज्ञ के उद् अवसान यजमान विधि पूर्वक यज्ञ स्थान से अपने घर लौट आता है।

अतिथि सेवा का फल यह होता है कि वह गृहस्थी भी आदर पूर्वक निमन्त्रित किया जाता है और सब प्रकार के पार्थिव, अन्तरिक्षीय और द्यौलोकीय भोग्य पदार्थों का उपभोग करता है।

स उपहूतः उपहूतः ॥१२॥ आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्मुम् ॥१३॥

भा०—वह अतिथि सेवक (उपहूतः) सादरनिमिन्त्रत होता है (उपहूतः) सर्वत्र निमन्त्रित होता है। ॥१२॥

अब अतिथि सेवक (इमं लोकम् आप्नोति) इस लोक के भागों के लिए भी सादर निमन्त्रत प्राप्त करता है और (अमूम्

आप्नोति (दूसरे लोकों के भागों में भी आदर पूर्वक निमन्त्रण पाता है ।

इतना महान् फल है अतिथि सेवा का

इससे आगे के अन्तिम मन्त्र में बताया—

ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥१४

भा०—जो अतिथि सेवक इस अतिथि सेवा की महिमा को जानता है वह (ज्योतिष्मतः) ज्योतिर्मय, प्रकाशवान्, ज्ञानवान्, (लोकान्) लोकों जनों के हृदयों पर भी (जयति) विजय प्राप्त करता है, उस पर वश करता है उन में प्रतिष्टा प्राप्त करता है ।

कितना अद्भुत और विलक्षण फल इस यज्ञ का वेद भगवान् ने बताया



॥ ओ३म् ॥

-: : ६ : :-

अतिथि सेवा का प्रकार

मानव जीवन शिक्षा और परीक्षा का जीवन है। प्रत्येक कार्य के लिए चाहे वह कितना ही अल्प क्यों न हो, शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। झाड़ू लगाना, वस्त्र धोना; वर्तन मांजना, चरित्र बनाना, नाम कमाना आदि २ सब कार्यों के लिए शिक्षा की जरूरत है। शिक्षा मनुष्य प्राप्त करले और परीक्षा उस की न हो तो शिक्षा कमजोर पड़ सकती और बोदी बन सकती है, उस की दृढ़ता और स्थिरता के लिए आवश्यक है कि समय-२ समय पर उसकी परीक्षा ली जाए। जब तक शिक्षा के अनुसार परीक्षा में मानव उत्तीर्ण नहीं होता वह प्रसिद्ध नहीं हो सकता और न प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है। परीक्षा के पर्चे में पास हो जाना कोई असाधारण बात नहीं, जीवन में जब परीक्षा का अवसर आए और तब उत्तीर्ण हो तो वह मर्द है, वन्दनीय मानव मानव है। परन्तु ऐसे मानव दुर्लभ है।

एक पण्डित विद्वान् किसी जहाज पर यात्रा कर रहे थे। भक्त आदमी थे। प्रात: काल उठकर *Deck* पर सामवेद गान करते थे, बड़ा मधुर स्वर और रसीली तान थी, जिस से यात्री खिचे आते थे। एक अंग्रेज यात्री जहाज में सवार था वह भी पण्डित जी के सामगान से प्रभावित होकर पण्डित जी के पाठ और गान के समय उपस्थित होता—पण्डित जी से मित्रता हो

गई। एक पखवाड़े की यात्रा थी दिन जल्दी बीत गए। बम्बई की बन्दरगाह पर दोनों उतरे। पण्डित जी के पास बहुत सामान था, कई ट्रकं थे भरे हुए, पण्डित जी ने सामान कुलियों से उठवाया और फाटक से गुजरने लगे। *Custom Officer* [चुंगी के अधिष्ठाता] ने रोक लिया, 'किसका सामान है, क्या है? पहले चूँगीकर अदा करो, वजन कराओ' "मेरा है इन में कुछ नहीं, कुछ नहीं"—हाथ जोड़ कर पण्डित जी ने कहा, "अजी ! बाबूजी जाने दीजिए"—"नहीं इसका वज़न होगा, तालाशी होगा", अधिष्ठाता ने कहा।

इतने में पीछे से वह अंग्रेज साथ भी आ गया। पूछा, पण्डित जी ! क्या बात है? "कुछ नहीं, यह बाबू ऐसे तंग कर रहा है, जाने नहीं देता", पण्डित जी ने उत्तार दिया। अग्रेज ने बाबू को सम्बोघन कर पूछा, "क्यों नहीं जाने देते ?" "अजी, इस का माल तो बहुत वज़नी मालूम होता है, तुलवा क्यों नहीं लेते"? अंग्रेज ने कहा "वेदगान तो बड़ा मधुर करते हो, उपदेश भी सत्यता पर बड़े रोचक शब्दों में देते हो, परीक्षा के समय असफल हो गये, उफ़ ! आप तो मित्रता समाप्त !"

पण्डित जी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए, जो आस्था अंग्रेज की उनके प्रति पैदा हो गई थी, जाती रही।

इसलिए, पाठक गण—शिक्षा के साथ परीक्षा अनिवार्य है। हमारी स्थिति का निर्णय जन साधारण करती है। अतिथि हमारे परीक्षक हैं—परीक्षक जब किसी स्कूल का निरीक्षण करने आता आता है; अध्यापक वर्ग कितनी उसके लिए तैयारियां करते हैं

और उसको प्रसन्न करने के लिए कितने साधन वर्तते हैं।

ऐसे गृहस्थी के घर पर जब अतिथि आता है। वह निरीक्षण करने आता हैं और कुछ देने आता है। मुलतानी भाषा में दो बड़ी प्रसिद्ध उक्तियां हैं :—

"मेहमान आया भगवान् आया" —

कौन किसे वल आंवदा, किस्मत ले आंदी टोर।
दाना पानी अपना, मेरे मालक दे हथ डोर॥

इन से निम्न सुन्दर शिक्षाएं प्राप्त होती हैं :—

१- अतिथि को भगवान् समझो, जैसे भगवान् के दर्शन कर लेने से आनन्द आता है. वैसे अतिथि को देखकर बाग़ बाग़ (हर्षित) हो जाना चाहिए।

२. ओ गृहस्थ ! उदास न हो, अतिथि तो भाग्य से मिलता है, वह अपना भोग अपने साथ लाता है, तेरा वह कुछ नहीं खाता। देनेवाला दाता ही सर्व संचालक है। अतः अतिथि के आने पर हर्ष मना।

अब ऐसी अवस्था में जैसे घनिष्ट मित्र के शुभागमन पर मनुष्य खश हो जाता है और उसके लिए नानां प्रकार के भोजन आदि तय्यार करता है। इसी प्रकार अतिथि का सत्कार करना चाहिए।

वेद भगवान् ने तो स्पष्ट रूपेण निम्नलिखित आदेश किया:—

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः ॥ यजु० ३—४४

पदार्थ:- हम लोग (करंभेण) अविद्यारूपी दु:ख से अलग होके (सजोषस:) बराबर प्रीति को सेवन करने (रिशादस:) दोष वा शत्रुओं को नष्ट करने (प्रघासिन:) पक्के हुए पदार्थो के भोजन करने वाले अतिथि लोग और (मरुत:) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को (हवामहे) सत्कार पूर्वक नित्य प्रति बुलाते रहें ॥

भा०—गृहस्थों को उचित है कि वैद्यक शूरवीरता और यज्ञ को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को बुलाकर उनकी यथावत् सत्कार पूर्वक सेवा करके उनसे उत्तम २ शिक्षाओं को निरन्तर ग्रहण करें ॥४४॥

इस मन्त्र में यथावत् सत्कार पूर्वक सेवा करना बतलाया और साथ ही यह भी बताया कि अतिथि कौन है अतिथि वह है (१) जो पक्का हुआ अन्न खाने वाला हो, जो भिखमगे जो आटा पैसा आदि मांगते हैं वह अतिथि नहीं हो सकते। (२) जो अविद्या आदि अन्धकार से छुड़ाने वाला हो (३) प्रीति से सेवन करने योग्य हो, श्रद्धावान हो और श्रद्धा उत्पन्न करने वाला हो (४) दोषों अथवा शत्रुओं को नष्ट करने वाला हो (५) यज्ञ कराने वाला विद्वान् हो।

एक महात्मा देव नगर समाज में यज्ञ कराने गए। गोघृत

और गोदुग्ध की उनकी प्रतिज्ञा थी । ला० चिमन लाल गांधी के मित्र थे । उनके मेहमान बने चिमन लाल जी ने एक गौ घर में बांध रखी थी ? जो डेढ़ किलो दैनिक दूध देती थी । महात्मा के आगमन से पूर्व गौ की धार निकाली गई । श्री चिमन लाल जी की पत्नी ने २ किलो मापा, आश्चर्य हुआ कि आधा १/२ किलो गौ ने कैसे ज्यादा दिया । इतने में महात्मा जी पहुंच गये । महात्मा जी १/२ किलो दूध पान करते थे । एक सप्ताह का यज्ञ था । महात्मा जी एक सप्ताह चिमन लाल के घर रहे, सप्ताह भर गौ २ किलो दूध देती रही ।

महात्मा जी के चले जाने के बाद वही डेढ़ किलो दूध पर आ गई । सच्चमुच्च अतिथि अपना भोग स्वयं लाता है । वह गृहस्थी के घर की बकरत देने आता है ।

इसी वेद के दूसरे अध्याय के ३४वें मन्त्र में पितरों तथा विद्वानों की सेवा का प्रकार और अधिक बिस्तार से बताया है :—

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ यजु २—३४ ॥

पदार्थः—हे पुत्रादिको ! तुम (पितॄन्) मेरे पूर्वोक्त गुण वाले पितरों को [ऊर्ज्जं] अनेक प्रकार के उत्तम २ रस [वहन्तीः] सुख प्राप्त करने वाले स्वादिष्टजल [अमृतम्] सब रोगों को दूर करने वाले ओषधि मिष्टादि पदार्थ [पयः] दूध

[घृतम्] घी [कीलालम्] उत्तम २ रीति से पकाया हुआ अन्न तथा [परिस्रुतम्] रस से चूते हुए पके फलों को देके [तर्पयत] तृप्त करो इस प्रकार तुम उनके सेवन से विद्या को प्राप्त होकर [स्वधाः] परधन का त्याग करके अपने धन के सेवन करने वाले [स्थ] होओ ॥३४॥

भावार्थ— ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा देके कहना चाहिये कि तुमको हमारे पितर अर्थात पिता माता आदि वा विद्या के देने वाले, प्रीति से सेवा करने योग्य है जैसे कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्या दान के समय हम और तुम पाले हैं वैसे हम लोगों को भी वे सब काल में सत्कार करने योग्य हैं जिससे हम लोगों के बीच में विद्याका नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों ॥

[दयानन्द भाष्य]

मन्त्र का भाव और पदार्थ दोनों स्पष्ट है, कृतघन्ता और अविद्या आदि न बढ़े इस लिए पितरों, विद्वानों तथा अतिथि की सेवा करनी चाहिए।

अथर्ववेद में अतिथि को व्रात्य बताया हैं। अथर्ववेद काण्ड १५, सूक्त ११

अतिथि सेवा का प्रकार बताया है:—

तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्यो
ऽतिथिगृहानागच्छेत ॥१॥

भा०—यदि इस प्रकार का विद्वान् गुणवान् अतिथि घर पर आ जावे तो—

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्व्रात्य क्वा-वात्सी व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा निकाम-स्तथास्त्विति ॥२॥

भा०—गृहस्थी उठकर उसके पास जाकर कहे, 'व्रात्य ! कहां रहे ?' व्रात्य ! जल पीजिए' 'व्रात्य ! जो आप को प्रिय लगे वैसा ही होगा' 'हे व्रात्य ! जैसी भी आपकी इच्छा हो, वैसा ही होगा' 'हे व्रात्य ! जो आपको कामना है, वही होगा'।

इन मन्त्रों में अतिथि को व्रात्य शब्द से सम्बोधन किया गया हैं, और सर्व प्रथम 'हिरण्यस्रुक्' मन्त्र में 'हिरण्यस्रुक कहा गया था, तात्पर्य एक ही है।

अतिथि के घर पर आने पर वेदानुयाइयों को बड़ी प्रसन्नता होती थीं, गृहस्थी अतिथि को भगवान् समझ कर अपना कल्याण ही मानता था। कहा भी है :-

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञो ऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ।१॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्—॥२॥ अथर्व काण्ड १५-१०-१,२।

जो ऐसा व्रतों से सुभूषित विद्वान् अतिथि जिस राजा के घर पर आवे, वह राजा अपना कल्याण समझे !

प्राचीन काल में तो गृहस्थी प्रतिदिन भगवान् से प्रार्थना करते थे कि–

अन्नं च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नःसन्तु मास्म याचिष्म कंचन

अर्थात् हमारे घरों में अन्न बहुत हो और हम अतिथियों को ढूंढते फिरें। हमारे पास याचना करने वाले हों और हम किसी से याचना न करें।

यह थी तड़प अतिथियों के लिए और ऐसा था सत्कार, तभी देश भी खुशहाल था और गृहस्थी भी सुखी थे। परन्तु आज तो अतिथियज्ञ का सफाया हो गया है। भारत के बड़े बड़े शहरों में तो पहले से ही यह प्रथा अतिथि सत्कार की प्राय: लुप्त सी हो चली थी यहां तक कि आर्य समाजें भी इसे अनावश्यक समझ कर मनचाहे अप्राकृतिक, अवैदिक नियम बनाकर समाज के सेवक को अधिकार सौंपरही हैं कि किसी होटल से सन्यासी अथवा उपदेशक महानुभाव को भोजन करा देना अथवा होटल का पता दे देना, विल समाज चुका देगी, उत्तर प्रदेश की तो कई एक समाजों में हमने देखा, बारी निश्चि कर रखी है, जब किसी दिन कोई उपदेशक, साधु समाज में आ जावे, तो उस दिन जिस की बारी हो, उसके घर भोजन कहला भेजना अथवा वहां से मंगवा लेना।

कितना अपमान है एक अतिथि विद्वान् का-आर्य लोग इस बात को नहीं समझते कि विद्वानों की यही बद्दुआ (शाप) ही है, जो आर्यसमाज के पतन का एक मुख्य कारण बन रहा है। नहीं तो अतिथि सेवा का फल, वह हमारी आंखों के सामने प्रायः दृष्टि-गोचर हो जाता है अथवा हम सुन लेते है :— नीचे के दो चार दृष्टांत इस मर्म को समझने के लिए प्रयाप्त होंगे :—

दृष्टांत—१ एक साधु जंगल से आया, भूखा था। भूख की निवृति के लिए उसने देखा कि एक ब्राह्मण जा रहा है उसके पीछे हो लिया और ब्राह्मण को कहा, भाई ! भूख लगी है, कुछ खिलादे। ब्राह्मण ने कहा, जा बाबा माफ कर। साधु न गया। हठ से उसके पीछे ही चला गया। ब्राह्मण ने पीछे मुड़ कर देखा कि यह साधु पीछा नहीं छोड़ता, उसे शरम आ गई। हलवाई की दुकान पर गया और कहा कि एक पाव पूड़ी इस साधू को खिला दें; साधु ने कहा, बाबा ! यह उदर रूपी कुत्ता मांगता था, तंग कर रहा था, तभी तुम्हें कहा, अब इसको अन्न मिल गया, अब मौन हो गया हैं अब साधु ने ब्राह्मण क मुख पर से कुछ उदासीनता झलकती देख कर ब्राह्मण को नगर से बाहर ले गया, मांग जो मांगता है। ब्राह्मण निर्धन था, उसकी कन्या थी, धन पास नहीं था, विवाह के लिए धन का अभाव वेग से अनुभव करता था। विचार किया जो अपना पेट नहीं भर सकता, वह मेरी क्या सहायता करेगा। साधु से बोला, तू तो स्वयं दुःखी है, मेरी समस्या आप हल नहीं कर सकते। साधु ने कहा, नहीं तुम चिन्तातुर मालूम होते हो, कहो, क्या चाहिए। ब्राह्मण ने अपनी

कथा कह सुनाई। साधु ने बाहर ले जा कर एक पर्वत पर बूटी दिखाई और कहा, यह बूटी है, इसको ले लो। जिसके सन्तान न हो उसको खिला देना, पुत्र हो जायेगा। ब्राह्मण के अपना पुत्र न था, सब, से पहिले उसने अपने घर पर आजमाया। स्त्री गर्भवती हो गई, भगवान् की कृपा से पुत्रोत्पन्न हो गया। ब्राह्मणी ने पूछा, यह कैसी अद्भुत औषधि थी। ब्राह्मणी ने ढढारा पीट दिया कि जिसकी सन्तान न हो, मेरे पतिदेव दवाई देते हैं जिससे पुत्र उत्पन्न होता है। अब हाजतमंद आने लगे, जिसने भी दवाई को उसको संतान मिल गई। दो चार वर्ष में ब्राह्मण विख्यात हो गया। ब्राह्मण को मूल्यवान पदार्थ भेंट होने लगे। कहीं से धन, कहीं से अन्न, कहीं से पशु मिलने लगे। ब्राह्मण सम्पन्न बनता गया। मारीशस से एक सेठ आया जिसकी सन्तान न थी। उसने भी ब्राह्मण से बूटी लेकर प्रयोग किया और प्रभु कृपा से सेठानी के गर्भ हो गया, समय आने पर पुत्रोत्पन्न हो गया। उसने एक मुद्रा (अंगूठी) जिसमें बड़ा मूल्यवान् नगीना जड़ा हुआ था और पच्चास सहस्र नगद धन ब्राह्मण को भेजा। ब्राह्मण मालामाल हो गया। ब्राह्मण ने मूद्रा सराफ को दिखाई तो उसने कहा कि केवल नगीनां बीस सहस्र रुपये का हैं है। अब ब्राह्मण की कन्या विवाह योग्य हो चुकी थी, बड़ी उदारता से कन्या का विवाह किया।

किसी आर्य उपदेशक का वह मित्र था, निर्धन था कुछ काल बाद उपदेशक महोदय की ब्राह्मण से भेंट हुई, अवस्था बदली हुई देखी। अब ब्राह्मण मालामाल हो चुका था। उपदेशक ने आश्चर्य से पूछा कि इतनी सम्पत्ति कैसे मिली, सारा गाथा उसे सुनाई और कहा कि—

यजुर्वेद अध्याय २ मन्त्र ३२ में

भगवान ने आज्ञा की पितरों अर्थात सेवा के योग्य पितरों की बास्तविक सेवा करने से पहले उनकी परीक्षा करें। सेवा तन मन धन से हो सकती है।

दो पैसे की हंडिया लेने से पहले उसे ठकोर कर देखा जाता है कि सही सलामत है परन्तु वर्तमान समय में पीले या भगवे वस्त्र देखकर आंरे अकल के अन्धे गांठ के पूरे बिना परीक्षा सेवा करने लग जाते हैं। घटना ! पाकिस्तान से जब १९४७-४८ में जब हम शरणार्थी बनकर आये तो उस समय मैं बानप्रस्थी था, हमारे एक मित्र स्वामी ब्रह्मा नन्द जी चन्दौसी में हमें परिवारों में प्रचार करने के लिए एक परिवार में ले गए दैव्यवशात् मेरा उपदेश हो रहा था और प्रतिभा नाम की एक कुमारी कन्या उस संत्सग में शामिल थी उपदेश की कोई बात उसे रुचिकर मालूम होई. सत्संग के बाद घर जाकर अपने पिता श्री मुकुट भिहारी लाल सराफ से जो आर्य समाज का प्रधान था। कहा कि पिता जो आज मैंने एक बानप्रस्थी के वचन में आकर्षक बातें सुनी' कृपाकर उसे घर बुलाये मैं उनसे अपनी शंकाओं का समाधान कराऊगी ! श्री प्रधान जी ने मुझे घर में भोजन का निमन्त्रण दिया। मैं उनके घर पहुंचा तो प्रतिमा ने मुझ से चन्द एक शंका का समाधान चाहा।

मेरे उत्तर से उसकी सन्तुष्टि हो गई। तो उसने कहा आज तक जितने आर्य समाज के उपदेशक हमारे पर आते रहे किसी ने

मेरी सन्तुष्टि नहीं की ! मैं पिता जी से कहूंगी आप से यज्ञ करायें। लगभग २५ वर्ष उनके गृह पर मैंने २५/३० यज्ञ कराये होंगे ! मुकुट भिहारी लाल सराफ़ था। आर्य समाज पर उस की आस्था थी अपने काम में बड़ा हुशियार था नित्यकर्म पूजा पाठ के बाद १० बजे दुकान पर जाता और ६ बजे लौट आता। सराफ़ा बाजार के उसके दूसरे बन्धु बान्धव सराफ़ प्रातः ८ बजे से रात के दस बजे तक काम करते परन्तु कमाई उतनी न हो सकती थी जितनी मुकटभिहारी लाल की थी। मुकुटभिहारी लाल जहां आर्य समाज का प्रधान था वहा पौराणिक संस्कार भी थे। दर पर आये भिक्षुक को द्रव्य रूप में कुछ न कुछ दे ही देता ! यह न पूछता तुम कौन हो किया करोगे क्रिया अवस्था है। एक दिन मुझे कहा मेरी दुकान को पवित्र करो। सायं काल में उसकी दुकान पर गया मेरे बैठ बैठे जो भी भीख मंगा आये। हाथ पसारे कच कोल आगे करे गिड़गिडाये झट उसको आना दो आना देदें।

एक साधु आया उस ने हाथ पसारा दो आने उसके हाथ पर रख दिये मैंने कहा आप ने पूछा किया जरूरत है कहा जी किस किस से पूछें दो अढ़ाई रुपये रोज खर्च हो जाते हैं। मैंने कहा तुम्हारे दान से सिग्रेट वीड़ी पिए या बुरा काम करे तो उसका फल पाप रुप में तुझे भी फल लगेगा कि नहीं कहा लगना चाहिए। फिर कहा कैसे करना चाहिए मैंने कहा छोले भूनवाकर या कोई और चीज रख दें। जब कोई आये मुठी भरकर देदें। अन्नदान में कोई रूकावट नहीं शत्रु भी दर पर आ जाये और अन्न की भिक्षा करे उसे निसंकोच द दिया करें ! दूसरे दिन दव्यवश मेरी मौजूदगी में एक साधु आया हाथ पसारा और प्रधान जी मुठी भर छोले उस को देने चाहे तो उसने लेने से

इन्कार कर दिया और उंगली के इशारे से कहा। मुझे तो द्रव्य चाहिए। मैंने कहा द्रव्य ले कर क्या करोगे मुंह पर ऐसे गोल हाथ कर के श्वांस को बाहिर फैंका! और कहा कि सिग्रेट पीओंगा प्रधान जी ने कहा यही मिलेगा पैसे नहीं मिलेंगे वह चला गया और प्रधान जी सुचेत हो गये।

वेद ने कहा जब साधु भिखारी महात्मा तुम्हारे सामने आये पहले उससे पूछो! भगवन् मेरे जीवन में रस क्यों नहीं आता? जीवन में जान क्यो नहीं आती। मेरी कमाई में बरकत क्यों नहीं आती इत्यादि जब इन प्रश्नों से तुमहारी सन्तुष्टि हो जायें। तब उस की खूब सेवा करो। नाम मात्र वेद के अनुयाई भी वेद की आज्ञा का पालन न कर सके तो सुख कहां से आये जब बीज ठीक नहीं तो फल कहाँ से आयेगा।

वैदिक भक्ति साधन आश्रम में एक बार सन्यासी महात्मा पधारे जो हमारे परिचित नहीं थे आश्रम की मर्यादानुसार उनका सत्कार किया उन्होंने कहा मैं अन्न नहीं खाया करता, केवल दूध लेता हूं चार किलो रोज दूध का प्रबन्ध कर दिया गया। दो दिन गुज़र गए। वेद का यज्ञ हो रहा था मैंने पूछा महाराज! वेद पाठ करोगे कहा कि मैं केवल अभ्यास करता हू। ऐसे साधु महात्मा जो हमारे सत्संग में आते है उनकी मैं मन ही मन बाह्य चेष्टाओं से उनके चरित्र व स्वभाव का अनुमान लगाता हू।

तीसरे दिन मैंने सत्संग में देखा कि महात्मा जी की दृष्टि स्त्रीयों की तरफ लगी होई थी! मैं समझा इसके विचार के

दूषित हैं हाथ जोड़ कर कहा ! महाराज ! आज तीन दिन हो गये इस से अधिक आप नहीं रह सकते, कृपा करके प्रस्थान कीजिए। वह चला गया कुछ दिनों के बाद मुझे आगरा नाई की मण्डी आर्य समाज यज्ञ कराने जाना पड़ा तो देखा कि वही देव मूर्ति साक्षत् मौजूद है मैंने मन्त्री जी से पूछा कि यह महाराज कब पधारे क्या काम करते हैं खान पान का क्या प्रब्रन्ध है कहा एक सप्ताह से यहां धरना लगाये हुए हैं केवल चार किलो दूध रोज पीते हैं एक दुकान दिखा दी वहां से पीते हैं।

कोई प्रवचन करते हैं कहा नहीं ! स्त्रियों की तरफ ज्यादा रूची है मैंने कहा हमार आश्रम में पधारे थे तीसरे दिन हमने इनकी करतूतों को देखकर हाथ जोड़ दिये मन्त्री ने झट दुकानदार से जा कर कहा कि अब दूध नही देना ! पौराणिक भाईयों की भांति आर्य लोग भी भेष को देखकर भूल जाते हैं साधु महात्माओं की सेवा करना हमारा धर्म है परन्तु यह देख लेना चाहिए कि साधू नाम का नहीं बलकि काम का साधु है।



अतिथि सत्कार

श्रीमती विजय राणी, अम्बाला छावनी के विचार

भारतीय इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि जहां सहिष्णुता, धार्मिकता, वैदिक मर्यादाओं का पालन तथा परोपकार वृत्ति हमारी संस्कृति-सभ्यता के द्योतक रहे हैं वहां अतिथि सत्कार संस्कृति का अभिन्न अङ्ग रहा है। हमारे ऋषियों ने भी पचमहायज्ञों का वर्णन करते हुए अतिथि यज्ञ को गृहस्थी के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताया है । यजुर्वेद तृतीय अध्याय के चतुर्थ मन्त्र में कहा में कहा है :—

येषामद्धयेति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

(प्रवास करता हुआ अतिथि जिन गृहस्थों का स्मरण करता है वा जिन गृहस्थों मैं प्रीति रखता है ऐसे गृहस्थी अतिथि को यथावत् जानें ।)

मनुस्मृति में तो अतिथि सत्कार न करने वाले के विषय में यहां तक लिखा है—कि चाहे कोई खेत कटने पर बचे हुए अन्न खायें, चाहे पांचों अग्नियों में होम करे अिन्तु यदि अतिथि सत्कार नहीं करता तो उसके सब पुण्य पाप में परिर्वातन हो जाते हैं ।

महाराज रन्तिदेव भारत के इतिकास में एक आदर्श अतिथि

सेवी के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके यहां हजारों अतिथि प्रतिदिन आते थे उनके जीवन में वह क्षण भी आया जबकि वह निन्तात कंगाल हो गए। उन्होंने राजमहल छोड़ दिया। वन के कन्द-मूल खाकर निर्वाह करने लगे। एक बार वे स्त्री तथा पुत्र सहित ऐसे बत में पहुचे जहां पत्ता तक खाने को न मिल सकता था। भूख से रानी तथा राजकुमार छटपटाने लगे। उनचासवें दिन उन्हें पास की किसी बस्ती से किसी ने भोजन दिया। ऐसी स्थिति में भी उनके मन में केवल यही दुःख था कि वे बिना अतिथि को भोजन खिलाए स्वयं भोजन कर रहे हैं। इतने में एक ब्राह्मण ने उनसे भोजन मांगा। महाराज रन्ति देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने आदर से ब्राह्मण को भोजन दिया। ब्राह्मण के भर पेट भोजन करने के उपरान्त राजा ने भोंजन स्त्री, पुत्र तथा स्वयं बांट लिया। अपना भाग वे खाने ही लगे थे कि एक शूद्र आ पहुचा। शूद्र को भी भोजन दिया। शूद्र के जाते ही एक अतिथि कई कुत्तों को साथ लिए वहां आ पहुचा। राजा से सारा भोजन भूखे अतिथि तथा कुत्तों में वांट दिया। राजा जब पानी पीने लगे चाण्डाल पानी से व्याकुल आ पहुंचा। राजा ने प्रसन्नता पूर्वक पानी भी दे दिया। स्वयं भूख तथा प्यास से मूर्छित होकर गिर पड़े। तभी अतिथि रूप में आए ब्राह्मण, शूद्र, प्यासे ने वास्तविकता प्रगट करते हुए कहा कि महाराज हम तो केवल आपकी परीक्षा ले रहे थे। आप वास्तव में महान् हैं। अतिथि वही अतिथ्य का अधिकारी है जो योग्य हो, लोभी न हो, एक ही घर में टिक कर न रहने लगे। मनुस्मृति में कहा—

उपास्ते ये गृहस्थः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥

जो गृहस्थ दूसरों के अन्न का लालच करते हैं वे आगामी जन्म में अन्नदाताओं के पशु बनते हैं ।) उसया दान, यज्ञ तप तथा अध्ययन अन्न देने वाले के हो जाते हैं ।

समर्थ, अज्ञानी और निस्तेज पुरुष को कभी भिक्षा न देनी चाहिए । आज अतिथि सत्कार की प्रथा घटती जा रही है । दो ही प्रमुख कारण हैं— १) योग्य तथा सत्पात्र अतिथि का अभाव २) दिखावे का प्रचलन । हमारे ऋषियों ने तो यहां तक भी कह दिया है कि अन्न के अभाव के तृण, भूमि, पानी और प्रिय वाणी से ही सत्कार करे । हमारा कर्तव्य है कि हम विद्वानों का तथा अतिथियों का सत्कार करें । गृहस्थाश्रम द्वारा ईश्वर ने हमें यह स्वर्ण अवसर दिया पुण्य कमाने का ।

अतिथि भी धार्मिक तथा सात्विक विचार गृहस्थियों के घर भोजन करें । भोजन का मनुष्य की वृत्तियों पर प्रभाव पड़ता जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन ।

भीष्म पितामह जब मृत्यु शैय्या पर पड़ें थे वी पांचों पाण्व और द्रोपदी धर्म का उपदेश लेने ऊनके पास गए । उस समय बड़ी युक्तिपूर्ण बात द्रोपदी ने पूछी—

"पितामह ! जब भरी सभा में दुःशासन ने मेरा चीरहरण किया और मैं सहायता के लिए चिल्ला रही थी उस समय आप

ने भी सहायता न की तब आपका धर्म कहां गया था ?" भीष्म ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया। भीष्म कहने लगे—"बेटी उस समय मैं दुर्योधन का पापपूर्ण अन्न खाता थाता था वही पाप मेरे मन और मस्तिष्क में समाया था। इसी कारण अत्याचार और अधर्म को देखते हुए भी न रोक सका। आज अर्जुन के बाणों से मेरा पापपूर्ण रक्त निकल गया है। इसलिए मेरा विवेक जाग उठा है।"

—विजय

यह था एक पाव पूड़ी का फल ?

दृष्टांत-२, रावल पिण्डी (पंजाब) के जगलों से निकल कर एक दीर्घकाय विशाल भुज श्यामल वर्ण लङ्गोट बन्द साधु महात्मा सड़क पर आ रहे थे कि सामने से एक सद् गृहस्थी दुकानदार, सिर पर टोकरी उठाए बगल में चपातियों की एक पोटली दबाए आ रहा हैं। गृहस्थी ने जब साधु को देखा तो चेहरे की मुर्झाई कलियां चमक उठीं। गृहस्थी का व्रत था कि जब तक वह कम से कम एक चपाती साधु महात्मा को न खिला ले, स्वयं अन्न नहीं ग्रहण करना। आज गृहस्थी को नगर में साधु की तलाश में कुछ देर से घूम रहा था, साधु न मिलने पर निराश और उदासीनता की कालिमा मुख मण्डल पर आछादित होने लगी थी परन्तु साधु को देखते ही जिस प्रकार मेघाच्छादित सूर्य मेघों के हट जाने से चमकने लगी। गृहस्थी तेजी से आगे बढ़ा,

प्रणाम करके बोला "भगवन् ! अन्न पान करलें । साधु भूखा था तथाऽस्तु कह कर दो चपाती ले कर साधु ने बैठ कर अन्न का सेवन किया । गृहस्थी ने पूछा, महाराज ! तृप्ति हुई ? नहीं भाई गृहस्थी ने हर्ष पूर्वक एक चपाती देदी । साधु जब खा चुका तो गृहस्थी ने पुनः पूछा, क्यों भगवन् ! और चाहिए ? साधु ने कहा, हां । गृहस्थी ने श्रद्धा पूर्वक अन्तिम चपाती भी दे दी और मन में गद गद प्रसन्न होकर कहन लगा, आज मेरा इधर आना और अन्न सफल हुआ । भगवन् ! अब तृप्ति हो गई ? हां प्यारे ! "जाओ, कमी न रहे !" गृहस्थी खुश-२ चला गया, बढ़ा, खूब बढ़ा रावलपिण्डी, मर्री, लाहौर, कलकत्ता आदि में कोठियां खुल गई, लाखों का स्वामी बन गया । यह सद् गृहस्थी कृपा राम साहनी थे और साधु महात्मा—स्वामी दयानन्द ! चार चपातियों का फल यह हुआ कि कृपा राम समृद्धि शाली बन गया ।

कृपा राम सन्तान हीन था, भतीजे को गोद में ले रखा था दुकान दारी तथा व्यापरि बढ़ने पर कृपा राम के दत्तक पुत्र ने नौकरों को आज्ञा दे रखी थी कि जो भी साधु महात्मा दुकान पर आए उस का ऋतु अनुसार सत्कार करो, दुग्ध, शरबत, चाय आदि से । एक दिन महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज रावल पिण्डी की दुकान पर गए, मालिक दूसरी दुकान में थे । नौकर में सर्व प्रथम महात्मा जी को कुर्सी पर बिठाया, दुग्ध आदि से सत्कार करना चाहा । वह भोजन कर गये थे । स्वामी को टैलीफोन पर सूचना दी वह आ गया गद गद ही झुक नमस्कार की और बड़े ध्यान पूर्वक महाराज जी की बात को सुना और समाधान किया यही व्यवहार और विधि उनकी व्यहार पर प्रचलित थे ।

दृष्टांत—३ हकीम गोवर्धन दास (प्रसिद्ध नाम गोदी राम) ग्राम मकलें जिला मुजफ्फरगढ़ का निवासी था। पहिले वह बेट हजारी में हकीम गुल इमामशाह की दवाईयां कूटता था फिर अपने ग्राम मकलें में जा कर पंसारी की दुकान निकाल ली। एक जिमींदार आया, उसे जलोदर का रोग था, उसको कहा कि ऊंटनी का दूध पियो। उसने ऊंटनी का दूध पिया परन्तु उसे लाभ न हुआ। प्रातः काल एक साधु आया और कहा कि प्यास लगी है। गोदी राम ने अभिवादन किया, आसन दिया। साधु ने पानी मांगा। गर्मी का मौसम था। माता से कहा माता जी! एक साधु आया है, जल मांगता हैं, जल दें। माता ने कहा बेटा! गौ की लस्सी (तक्कर) रखी है, साधु से पूछो तक्कर पियेंगे? साध ने स्वीकार किया। माता ने तुरन्त एक पुराठी तय्यार कर दी और उस पर मखन रख दिया और तक्कर के साथ गोदी राम को दी, की जाओ. साधु को खिला दो। साधु खाली पेट लस्सी न पीवे। साधु ने गोदी राम की श्रद्धा को देख कर आशीर्वाद दी, कि तुम्हारा नाम बहुत चलेगा। जलोदर का एक रोगी आवेगा, उसे ऊंटनी का दूध बिना बतलाए देते रहना। वह साधु उस जिमींदार के पास से गुज़रा, जमींदार के पूछने पर उसने गोदी राम के पास दवाई के लिए जाना बतलाया। साधु को विश्वास पर वह जिमींदार पुनः गोदी राम के पास गथा उस ने दूसरे दिन से उसे ऊंटनी का दूध पिलाना आरम्भ कर दिया। रोगी को दस्त लग गए और आराम आ गया उस जिमींदार ने डौंडी पिटवा दी, गोदी राम जैसा कोई हकीम नहीं है, बड़ा योग्य और निपुण वैद्य हैं। बस गोदी राम का नाम चढ़ गया, वह कमाया! वह कमाया! कि लोग देख देख कर चकित हो गये। दूर दूर लोग औषधि के लिए

आते और स्वस्थ हो कर वापिस जाते । यह था उस साधू-अतिथि की स्वल्प सेवा का फल !

गोदी राम भक्त आदमी था, गायत्री जाप भी करता था, उस से उसे पेशाब और चोला सूंघ कर, रोग के निदान में प्रसिद्धि प्राप्त हुई । बहुत बड़ी सम्पति छोड़ मरा । आज उसकी सन्तान रोहतक और करनाल में वैदिक की दुकानें लगाए हुए है और पिता की तरह नाम कमा रही है ।

दृष्टांत-४

महाराजा विक्रमादित्य को 'पर दुःख काटन हार विक्रमादित्य' कहते थे । एक दिन महाराज ने अपने गुरु से पूछा, भगवन् ! मुझे 'पर दुःख काटन हार विक्रमादित्य' क्यों कहते हैं । गुरु ने कहा, कल प्रातः काल जो व्यक्ति तुम्हें पहिले मिले, उससे पूछ लेना । प्रातः हुई, महाराजा वायु सेवन को बाहर निकला तो सर्व प्रथम एक भंगिन से भेंट हुई । महाराजा ने यह सोच कर कि यह भंगिन हैं, इसे क्या पता हो सकता है, उससे न पूछा । गुरु ने पूछा, क्यों विक्रम ! पूछा था । कहा, महाराज ! एक भंगिन मिली थी, उससे मैंने नीच समझ कर नहीं पूछा । गुरू ने कहा; कल जो पहिले मिले, उस से पूछ लेना । दूसरे दिन भी वही भंगिन पहिले मिली । फिर भी न पूछा । गुरु ने फिर वही आज्ञा की । तीसरे दिन भी भगिन मिली । अब राजा ने विवश होकर उस जमादारिन से पूछा, क्यों देवी ? मुझे "पर दुख काटन हार महाराजा विक्रमादित्व" क्यों कहते हैं । देवी ने कहा, यहां से तीन कोस की दूरी पर एक ग्राम है वहां ग्राम के अमुक मकान में एक ब्राह्मणी रहती हैं, तुम उससे जा पूछो, वह तुम्हें बता देगी

महाराज वहां गया और ब्राह्मणी से पूछा, क्यों देवी ? मुझे 'पर दुख काटन हार विक्रमादित्य' क्यों कहते हैं। देवी ने उत्तर दिया कि राजन् ! अमुक देश यहां से चार कोश दूर है, वहां आप जायें। पहिले एक वाटिका आएगी, वह सूखी पड़ी है. आप जब उसमें प्रवेश करेंगे, वाटिका हरी भरी हो जाएगी । वह वाटिका वहां के राजा की है। उस राजा के कोई सन्तान नहीं है। वह वाटिका के प्रफुल्लित होने का समाचार सुन कर आपके पास दोनों राजा और राणी आयेंगे और सन्तान के लिए आप से आशीर्वाद चाहेंगे। आप आशीर्वाद दे देना। आपके आशीर्वाद से उनके घर पुत्र उत्पन्न होगा। जब वह पुत्र (बालक) बोलना सीख जाए तो आप उससे यही प्रश्न करें, वह आपको ठीक ठीक उत्तर देगा। तथा अस्तु, कहकर महाराज जी उसी देश को चले गए और वाटिका में प्रविष्ट हो गए। वाटिका हरी भरी हो गई। देश के राजा को ज्यों ही ज्ञान हुआ। उसी समय राजा और रानी दोनों महाराजा विक्रमादित्य के पास वाटिका में पहुंचे, प्रमाण करके विनय की, कि भगवन् ! जिस प्रकार से यह सूखा चमन आपके शुभागमन से हरा भरा हो गया है, वैसे हम पर भी कृपा, करो हमारे सन्तान नहीं ऐसा आशीर्वाद दो कि हम वढे। महाराज ने आशीर्वाद दिया और अपने देश आया। वर्ष बीतने पर भगवान् की महती कृपा से राजा के घर पुत्रोत्पन्न हुआ, यह शुभ समाचार महाराज विक्रमादित्य तक पहुंच गया। नवजात शिशु चन्द्र कला की भान्ति दिनों दिन बढ़ता गया। अढ़ाई वर्ष का जब बोलन लगा तोमहाराज विक्रमादित्य वहां आए और बालक से पूछा'' मुझ 'पर दुःख काटन हार विक्रमादित्य' क्यों कहते हैं।

बालक बोला—

राजन् ! एक ब्राह्मणी अपने दो पुत्रों और एक पुत्री के साथ जङ्गल में रहा करती थी। घर में रोजी कमाने वाला कोई पुरुष न था। बालक छोटे थे। ब्राह्मणी मेहनत मजदूरी करके गुजारा करती। एक दिन मजदूरी न मिली, बालक भी भूखे और आप भी भूखी रह गई। दूसरे दिन मजदूरी मिल गई आटा बाटा घर लाकर भोजन तय्यार किया और तीन थालियों में परोस कर बच्चों के आगे रखा और शेष भाग अपने लिए रख दिया। अभी बालकों ने ग्रास भी न तोड़ा था कि एक साधु ने आकर द्वार पर आवाज को, भाई तीन दिन से भूखा हूं, भिक्षा दो। बड़े भाई ने झट अपनी थाली उस महात्मा के आगे सहर्ष धर दी। छोटे भाई ने इन्तजार की, कि शायद साधु को जरूरत पड़ जावे, खाना न खाया। साधु बड़े भाई के भाग से सन्तुष्ट न हुआ छोटे भाई ने अपना भाग आगे कर दिया। वहिन ने एक चपाती निकाल रखी थी, बाकि खा ली थी। साधु ने जब दूसरा भाग भी खा लिया तो तीसरे को आशा प्रगट की तो ब्राह्मणी माता डण्डा उठाकर साधु के पीछे दौड़ी, दुष्ट ! मेरे छोटे २ बच्चे कल के भूखे हैं दो भाग तू खा गया अब सबको भूखा मारना चाहता है। साधु जान बचा कर भाग निकला। बड़ा भाई तू था जिसने सर्व प्रथम अपना भाग भेंट किया इसलिए तू "परदुख काटनहार विक्रमादित्य" बना मैं तेरा छोटा भाई भाई था जिसने कुछ देर बाद अपना भाग अतिथि के अर्पण किया। अतः मैंने आप के बाद जन्म लिया। ब्राह्मणी हमारी बहिन थी जिसने अतिथि सेवा के भाव से अपना कुछ भाग साधु अतिथि के लिए निकाल रखा था।

भंगिन हमारी माता जिसने क्रोध चाण्डाल के वश में जाकर साधु को भगा दिया था।



प्रिय पाठक ! यह है अतिथि सेवा का फल। तभी वेद भगवान् ने कहा कि अतिथि से पहिले न खाओ, जो पहिले खाता है उस का भाग्य मारा जाता है।

आज अतिथि सेवा का लोप हो रहा है। पाकिस्तान बन जाने पर तो स्वार्थ इतना बढ़ गया है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। वह देश जो विदेशियों को भी जल के स्थान पर दूध भेंट करता था। आज आप दूध और घी के लिए तरस रहा है। वह भाग्य ! मति इतनी मन्द हो गई है कि मूल कारण की ओर ध्यान ही कोई नहीं देता।

प्यारे आर्य भाइयो ! सच्च जानें कि आर्य समाज में शिथिलता का मुख्य कारण साधु महात्म ओं का आतिथ्य सत्कार न करना है। अतः चेतो ! सावधान हो ! जीवन गर बनाना है, देश को उठाना है। देश का गौरव बढ़ाना है तो अतिथि यज्ञ का विशेष मान करो और पालन करो। प्रभु करें, हमें वह वैदिक सुमति पुनः प्राप्त हो ताकि हमारा और देश का उत्थान हो।

जो अपनायगा, इष्ट फल पाएगा, नहीं तो पछताएगा।

ओम् शम्

वैदिक भक्ति साधन आश्रम
रोहतक

सत्य भूषण
आचार्य वानप्रस्थी

॥ ओ३म् ॥

भजन

ईश्वर तुम हो दया करो तुम बिन हमारा कौन है ।
दुर्बलता दीनता हरो तुम बिन हमारा कौन है ॥१॥

माता तू ही तू ही पिता बन्धु तू ही, तू ही सखा।
तू ही हमारा आसरा तुम बिन हमारा कौन है ॥२॥

जग को रचाने वाला तू, दुखड़ें मिटाने वाला तू ।
बिगड़ी बनाने वाला तू, तुम बिन हमारा कौन है ॥३॥

तेरी दया को छोड़ कर, कुछ भी नहीं हमें खबर।
जाएं तो जाएं हम किधर, तुम बिन हमारा कौन है ॥४॥



॥ ओ३म् ॥

भजन-१

मया बरस बरस रस वारी।
बून्द-२ पर तेरी जाऊं बार बार बलिहारी ॥
नदी सरोबर सागर बरसे, लागी झड़ियां भारी।
मोर अङ्गना क्यों न बरसे, मैं क्या बात बिगारी ॥
तू बरसे मैं जी भर नहाऊं, दोनों भुजा पसारी।
नयन मूंद कर नाचूं गाउं, अपना आप बिसारी।

भजन-२

अशरण शरण मुक्ति के धाम। अविरल अविचल अगम अकाम।१
घट-घट वासी पूर्ण एक। रखियो निज भक्तन की टेक।२।
तुम स्वामी, हम सेवक दीन। तुम हो सागर, हम है मीन।३।
भक्ति भाव भरपूर कहांय, निशि वासर तेरे गुण गांय।४।
ज्ञान भानु का होय प्रकाश। केवल लगी तुम्ही से आस।५।

मुद्रक : जस्सू प्रिंटिंग प्रैस, आर्य नगर रोड, रोहतक।